

काशीहिन्दूविश्वविद्यालयः

Banaras Hindu University



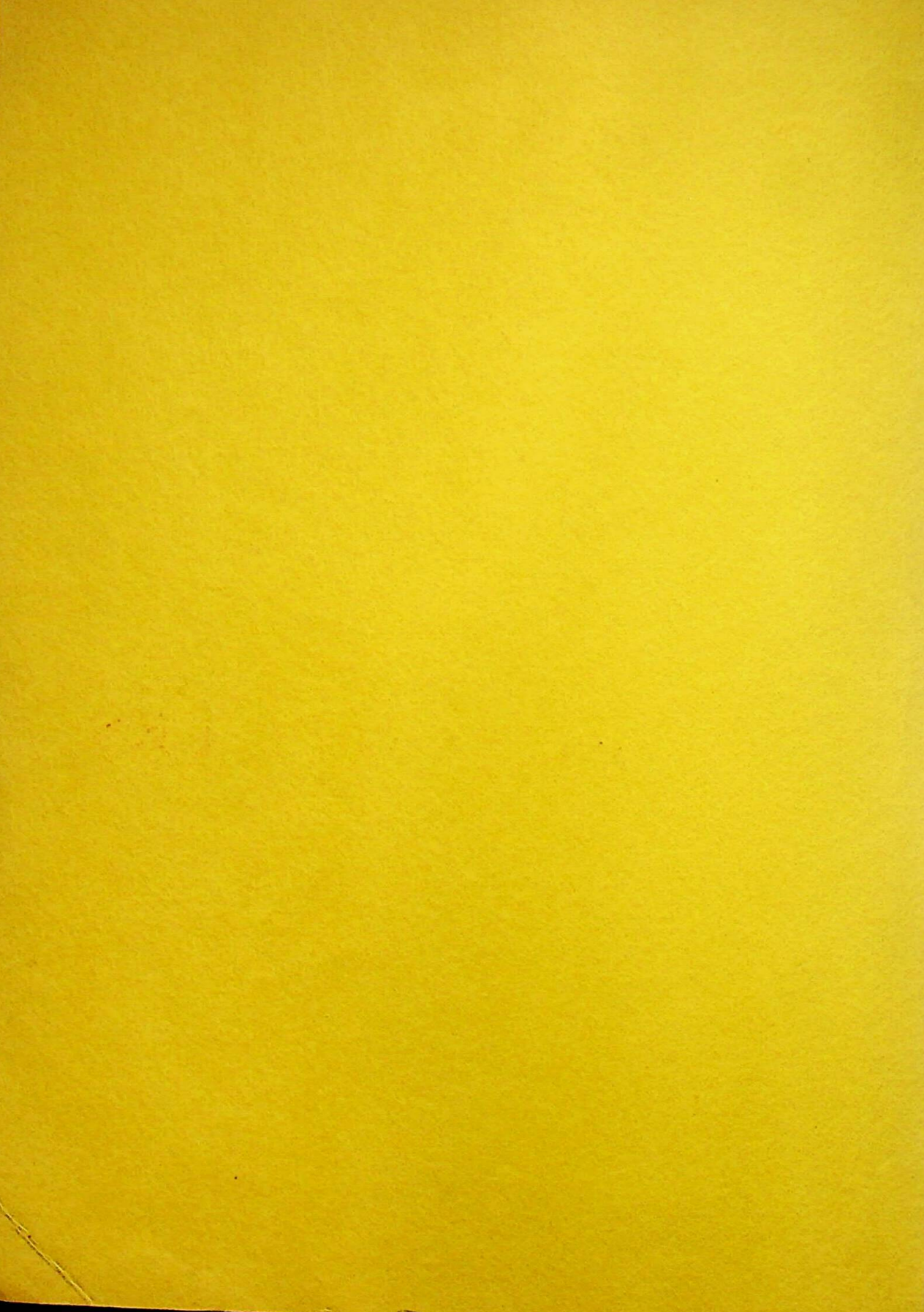
द्वितीयम् अन्तराष्ट्रियं संस्कृतसाहित्यसम्मेलनम्

2nd International Conference on Sanskrit Sahitya

10-12 फरवरी, 2015 ई.

SUMMARIES OF PAPERS

Edited by
Department of Sahitya
S.V.D.V.
B.H.U.
VARANASI



काशीहिन्दूविश्वविद्यालयः

Banaras Hindu University



द्वितीयम् अन्तराष्ट्रियं संस्कृतसाहित्यसम्मेलनम्

2nd International Conference on Sanskrit Sahitya

10-12 फरवरी, 2015 ई.

SUMMARIES OF PAPERS

Edited by
Department of Sahitya
S.V.D.V.
B.H.U.
VARANASI

विषय-सूची

1. संस्कृत साहित्य में पुनर्जन्म की अवधारणा
2. संस्कृत साहित्य और धर्म
3. Yoga in Banabhatta's kadambari
4. संस्कृत साहित्य के माध्यम से नैतिक और व्यावहारिक ज्ञानप्रसार
5. संस्कृत साहित्य एवं विज्ञान
संस्कृत साहित्य का इतिहास
संस्कृत साहित्य का नवीन इतिहास
6. धर्मशास्त्रकालीन शिक्षा प्रणाली
7. सांस्कृतिक सामाजिक एवं राजनैतिक सन्देश की नवीन दिशा
8. धुक्षते हा धरित्री महाकाव्य में युग चेतना
9. संस्कृत पत्रिकाओं में प्रकाशित हास्य कविताएँ
10. शोध-पत्र सारांश
11. पुराण में वर्णित सृष्टि तत्त्व का वैज्ञानिक अनुशीलन
12. शल्य चिकित्सा के आदिम स्रोत-वेद
13. रामानुजीय मत में ब्रह्म, जीव तथा जगत् के सम्बन्ध का वैज्ञानिक विवेचन - स्वाति शर्मा
14. Man and Society : A Ramayanic Perspective
15. कविशिरोमणि भट्ट मथुरानाथशास्त्री की ऐतिहासिक कथाएं
16. बौद्ध दर्शन में अनात्मवाद
17. आश्चर्य चूड़ामणि में अद्भुत रस की अभिव्यंजना
18. मोहनलाल पाण्डेय के चित्रकाव्य की चारुता
19. वेदभाष्यकार-श्रीसायणाचार्यस्य अलौकिकदृष्टिः
20. सामाजिक तनावमुक्ति में महाभारत के कतिपय सन्दर्भ
21. अध्यात्मरामायणस्थरसविवेचनम्
22. संस्कृत साहित्य में नवाचार
23. The Prenatal Sacraments for Women as Treated in the kausikasutra of the Atharvaveda sahitya- A study
24. वेदों में वृक्ष
25. महायान सूत्रालंकार में त्रिकायवाद की अवधारणा
26. मीमांसा में वाक्यार्थ बोध
27. आचार्य कुन्तक की दृष्टि में औचित्य
28. आधुनिक महाकाव्य उत्तरनैषधीयचरितम् में वर्णित प्रस्तुत आदर्श नारी चरित-दुर्गा उपाध्याय
29. आधुनिक भारतीय सामाजिक जीवन में पुरुषार्थ चतुष्टय की अपरिहार्यता-डॉ० पूनम
30. विदुरनीति तथा मानवाधिकार
31. सहास्तित्वाय शान्तिसूत्राणि (सनातनकवेः कृतीनां विशेषसन्दर्भे)

- डॉ० राजेश कुमार वैरवा
डॉ० पुष्पा सिंह
Dr. Gitanjali Devi
डॉ० विनोद कुमार सिंह
श्रीमती शीला यादव
डॉ० सच्चिदानन्द तिवारी
डॉ० विनय कुमार राय
डॉ० हरकेश वैरवा
डॉ० भूपेन्द्र कुमार राठौर
आरती पुण्डीर
तारेण कुमार शर्मा
दुर्गेश कुमारी
डॉ० स्वर्ण रेखा
डॉ० शैलेश कुमार मिश्र
विश्वनाथ M.V.
अर्चना वर्मा
डिम्पल
डॉ० अपर्णा शर्मा
डॉ० मधुबाला शर्मा
संजीवनी आर्या
जितेन्द्र कुमार तिवारी
योगेश चन्द्र परगाई
डॉ० प्रयाग नारायण मिश्र
Sri Pranab Jyoti Kalita
सुदीप
कविता शर्मा
सपना यादव
सरदार सरबजीत सिंह
डॉ० शैल कुमारी तिवारी
डॉ० शोभा मिश्रा

32. अभिराजराजेन्द्रमिश्र के कथा-साहित्य में सामाजिक चेतना शेखावत	श्रीमती अशोक कंवर
33. How to Behave when we are Guest	-Dr. Asavadi Sudhama Vamsi
34. संस्कृत सूक्तियों में नैतिक और व्यावहारिक ज्ञान का प्रसार	प्रो. ओमप्रकाश वैरवा
35. शिशुपालवधम् महाकाव्य में चित्रकाव्यमीमांसा	डॉ० शैलेन्द्र कुमार शर्मा
36. संगीतशास्त्र में काव्यशास्त्रीय तत्त्वों की उपयोगिता	संदीप कुमार ओझा
37. संगीतशास्त्र का आधार ग्रन्थ 'नारदीय-शिक्षा'	आनन्द कुमार विश्वकर्मा
38. हरिवंश पुराण में सांगीतिक तत्त्वों का निरूपण	सारिका पाण्डेय
39. मेघदूताश्रित उज्जयिनी विमर्श	डॉ० अभिमन्यु सिंह
40. संसार के साहित्यिक वाद-एक संक्षिप्त परिचय	डॉ० संतोष कुमार पाण्डेय
41. The Definition of Rasa Sutra : According to Bharata	Nila Tilakantha
42. आधुनिक संस्कृतसाहित्य में भारतवर्ष की समसामयिकी राजनीति : नमो निर्वाचनम् के सन्दर्भ में	डॉ० ओम् प्रकाश मिश्र
43. भारतीय सिनेमा के परिप्रेक्ष्य में अनुकरण सिद्धांत की समीक्षा	सतरुद्र प्रकाश
44. वर्तमान प्रेक्षणीयक परम्परा में नाट्यशास्त्र की प्रासङ्गिकता	डॉ० सविता ओझा
45. शकुन्तला : संस्कृत नाटक 'अभिज्ञान शकुन्तलम्' का बांग्ला गद्यानुवाद-डॉ० सोमा दत्ता	डॉ० राजेश्वर कुमार मिश्र
46. वेद एवं लोक संस्कृति	निधि श्रीवास्तव
47. नाट्यवेद वृत्ति अभिनवभारती में वर्णित ध्रुवागान-एक अध्ययन	आरती वाही
48. संगीत रत्नाकर के परिप्रेक्ष्य में प्रबन्ध : एक संक्षिप्त अध्ययन	Awadhesh Kumar Bhatt
49. Resuscitate a Hallowed Language	Sakshi Srivastava
50. Sanskrit : Sacred Language	ज्योत्सनासागर
51. नाट्यशास्त्र में वर्णित सांगीतिक अलंकार	डॉ० संगीता सिंह
52. संगीत आध्यात्मिक पक्ष	अल्पना
53. परम्परागत भक्ति संगीत	अनामिका प्रकाश
54. नाट्यशास्त्र में उल्लिखित सांगीतिक तत्व	उत्कर्ष गुप्ता
55. मतंग कृत बृहद्देशी ग्रन्थ : एक परिचय	संगीता शुक्ला
56. संगीतशास्त्र ग्रन्थ परम्परा में संगीत रत्नाकर का वैशिष्ट्य	कृष्णा बाला सिंह
57. सौन्दर्यशास्त्र	अर्चना यादव
58. धर्म एवं संगीत	Miss. Anuradha Raturi
59. Music in the Tradition of Sanskrit Theatre	आहना शर्मा
60. भारतीय संगीत शास्त्र का क्रमिक विकास	पूनम वर्मा
61. संगीतशास्त्र का आदि ग्रन्थ : नाट्यशास्त्र	रागिनी सिंह
62. विज्ञापन में संगीत	आकांक्षा तिवारी
63. मध्यप्रदेश के जनजातीय वर्ग की संगीत शास्त्रीय पृष्ठभूमि	श्वेता राय
64. संस्कृत साहित्य और धर्म	शिवानी सोनकर
65. व्यक्तिगत जीवन के विकास में संगीत का आध्यात्मिक पक्ष	प्रियंका पाण्डेय
66. सौन्दर्य शास्त्र	

67. संगीत में सौन्दर्यशास्त्र	डॉ० रामशंकर
68. संगीतशास्त्र : एक अध्ययन	श्रेया श्रीवास्तव
69. हवेली संगीत की परम्परा	डॉ० वेणु वनिता
70. संस्कृतवाङ्मये नैतिकशिक्षा व्यवहारज्ञान च	डॉ० श्रीगोविन्दपाण्डेयः
71. भारतीय सौन्दर्यशास्त्र में संगीत की अवधारणा	चन्दन विश्वकर्मा
72. सांगीतिक बद्धियों में अलंकार-योजना का शास्त्रगत अनुशीलन (तबला वाद्य के संदर्भ में) - दीपक त्रिपाठी	
73. विभिन्न संस्कृत ग्रन्थों में वर्णित उपरूपक	स्वाति त्रिपाठी
74. नृत्यकला के साहित्यिक स्रोत	स्वप्निल सत्यम्बदा
75. लोकगीतों में सौन्दर्यशास्त्र का महत्व	मनु प्रकाश मौर्य
76. वैदिक छन्द और भारतीय ताल छन्द	ज्ञान सिंह पटेल
77. महाराणाकुम्भाकृतसंगीतराज का विषयवैशिष्ट्य	रुनेहा गुप्ता
78. वायुपुराण में वर्णित सांगीतिक तत्त्वों की समीक्षा	मंजू देवी
79. शास्त्रीय संगीत में निहित शास्त्र	गरिमागुप्ता
80. संगीतशास्त्र में परिलक्षित तन्त्री वादन के विभिन्न आयाम	रितु सिंह
81. संगीत शास्त्र वैदिक साहित्य में भारतीय संगीत	शुचि उपाध्याय
82. भागवत पुराण एवं कांगड़ा : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	प्रो. सरोज रानी
83. संस्कृत साहित्य में काशी (वाराणसी) का सांस्कृतिक अध्ययन	रामबाबू श्रीवास्तव
84. बिहार का लोक साहित्य	डॉ० अनामिका कुमारी
85. संस्कृत वाङ्मय में संगीत	डॉ० सुमिता बनर्जी
86. भारतीय संगीत के प्रचार-प्रसार में इलेक्ट्रानिक मीडिया का महत्व	-शिबि तिवारी
87. संगीतशास्त्र के प्राचीन ग्रन्थों का महत्व	राकेश कुमार
88. भारतीय कलाओं में पदम और साहित्यिक साक्ष्य	आभा मिश्रा पाठक
89. महामहोपाध्यायचार्यगङ्गाधरशास्त्रिकवित्त्वसौन्दर्यसमीक्षा	डॉ० शिवरामशर्मा
90. काव्यानां मूलम्	गणेशराज जोशी
91. अभिनवशुक सारिका में आधुनिकता एवं परम्परा के आयाम	संध्या
92. हरिनारायण दीक्षित की कृतियों में आर्थिक चिंतन	रुबी साहू
93. संस्कृत साहित्य एवं विज्ञान	डॉ० रूपम पाठक
94. आचार्यरेवाप्रसादद्विवेदिनः खण्डकाव्येष्वन्तराष्ट्रीयचिन्तनम्	नवराज निरौला
95. आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी का काव्य चिन्तन वैश्विक परिप्रेक्ष्य में	नीरज कुमार त्रिपाठी
96. अलिविलासिसंलाप के पंचम शतक में तीर्थाटन एवं अलंकार विवेचन-संजय त्रिपाठी	
97. विविध समस्यानां समाधान् संस्कृतम्	डॉ० रामानन्द शर्मा

1. संस्कृत साहित्य में सांख्य दर्शन का महत्त्व	डॉ० झरनारानी त्रिपाठी
2. रवीन्द्रनाथस्य साहित्ये संस्कृतसाहित्यस्य प्रभावः	डॉ० शिप्रा राय
3. दर्शनं विज्ञानं च	विश्वजित् राज
4. बौद्धधर्म की अष्टांकमार्ग : एक आधुनिक दृष्टिकोन लोकजीवन	इन्द्राणी सिंह
5. कोरान-गीता-ग्रन्थद्वयोः सादृश्यानुसन्धानम्	अमितसाना
6. वेदों में साहित्यिक विधाओं का अवदान	डॉ० गिरेन्द्र शर्मा
7. संस्कृतसाहित्ये काव्य-कारण स्वरूपम्	डॉ० रामचन्द्र मिश्र
8. सामाजिक-सांस्कृतिक प्रतिमानों के सन्दर्भ में संस्कृत पत्रकारिता और सा.-डॉ० श्रीनिवास शर्मा	डॉ० सच्चिदानन्दस्नेही
9. संस्कृत साहित्य में महिला सशक्तीकरण के तत्त्व	शैला यादव
10. उज्ज्वलनीलमणि के सन्दर्भ में सौन्दर्यतत्त्व	पल्लवी त्रिवेदी
11. शुम्भवधमहाकाव्य में वर्णित देवनदी गंगा	डॉ० वेंकटेश शर्मा
12. वर्तमानयुगे वेदान्तदर्शनस्य उपयोगित्वम्	तहसीन मण्डल
13. ऋग्वेदीय दशम मण्डल में भाव-सौन्दर्य : एक अध्ययन	विकास शर्मा
14. रत्नमाला व्याकरणम् एक पर्यालोचनम्	प्रमोद पाण्डेय
15. बाणभट्ट की शैक्षिक दृष्टि एक समीक्षण	प्रियंका पाठक
16. रघुवंशमहाकाव्य में मानवीय-मूल्यों की अवधारणा	सुमित्रा
17. यज्ञ में यज्ञपात्रों के प्रयोग की उपयुक्त विधि	श्रीमित्रा
18. महाकवि अश्वघोष का पाण्डित्य	सरदार अमरजीत सिंह
19. संस्कृत एवं सिख साहित्य में संस्कृति	डॉ० श्रीप्रकार सिंह
20. चण्डी (दुर्गा सप्तशती) काव्यशास्त्रीय समीक्षा	डॉ० पम्पा सेन विश्वास
21. वैदिक वाङ्मय में नीति शिक्षा	Kumarika Sarma
22. Place of Epistemology in Indian Philosophy-A brief study	डॉ० ओम कुमार शर्मा
23. संकल्प पाठ-एक विवेचन	डॉ० सुनीता जायसवाल
24. वेदों के नित्यता की मीमांसा	सुभाष चन्द्र यादव
25. महाभारत में वर्णित जनतांत्रिक मूल्य : एक विमर्श	सुश्री सस्मिता पति:
26. स्वप्नवासवदत्तस्य साहित्यिकं चिन्तनम्	डॉ० रविकान्त गौतम
27. अशोक का इतिहास में स्थान	डॉ० रेनू सिंह
28. सृष्टि उत्पत्ति-वैदिक लौकिक साहित्य एवं विज्ञान की दृष्टि में	डॉ० सुरेश चन्द्र चौबे
29. संस्कृत साहित्य के माध्यम से नैतिक और व्यावहारिक ज्ञान प्रसार	बृहस्पति-भट्टाचार्य
30. अधिरघुवंशं विमानतथ्याधुनिकप्रेक्षणम्	डॉ० अशोककुमार शतपथी
31. काश्मीरोदयम् - एकमवलोकनम्	डॉ० संतोष कुमार पाण्डेय,रांची
32. ऋग्वेदीय अंकों की प्राचीनता : एक समीक्षण	
33. संस्कृत साहित्य के माध्यम से नैतिक और व्यावहारिक ज्ञान प्रसार -नीलम त्यागी	
34. A Critical Exposition of Yama as is Depicted in the Field of Vedic Eschatology - Amborish Adhyapok	
35. वैदिकवाङ्मये नार्याः विद्याप्राप्तेरधिकाराः	डॉ० रेनू देवी
36. संस्कृत साहित्ये वर्णिता शिक्षाव्यवस्था आधुनिका : समाजश्च	डॉ० राकेश सिंह
37. संस्कृत वाङ्मय में चित्रित भारतीय संस्कृति के वैश्विक रूप	प्रो० कृष्ण बिहारी भारतीय

- | | |
|---|------------------------|
| 38. पुराण एवं साहित्य | डॉ० दिवाकर मिश्र |
| 39. संस्कृतसाहित्ये वैष्णवस्तोत्रसाहित्यस्य महत्त्वम् | मधुकर मिश्र |
| 40. अर्वाचीन संस्कृत साहित्य की प्रवृत्तियाँ | प्रो० अर्चना दूवे |
| 41. संगीत और साहित्य में लय-ताल का समन्वय | संदीप कुमार पटेल |
| 42. संस्कृत-साहित्य एवं कला | सौम्या सिंह |
| 43. संगीतशास्त्र एवं संस्कृत साहित्य | संदीप राव केवले |
| 44. साहित्य के परिप्रेक्ष्य में अभिनय का स्वरूप | कृतिका जायसवाल |
| 45. संगीत शिक्षा में शास्त्र पक्ष का महत्त्व | एकता मेहता |
| 46. पुराणेतिहास एवं साहित्य | ममता यादव |
| 47. संगीतशास्त्र एवं संस्कृत साहित्य | अंकुर मिश्रा |
| 48. रसः किमानन्दस्वरूपः उत सुखदुःखात्मकः | डॉ० अरविन्द कु० सिंह |
| 49. संस्कृत भाषा और वैदिक स्वरों (सांगीतिक स्वर सरगम) का क्रमिक विकास - अनिरुद्ध कुमार सिंह | गौरी प्रिया सोमनाथ |
| 50. Koodiyattam-The Ancient Sanskrit Theatre | मनीष कुमार वर्मा |
| 51. नाट्यशास्त्र के अनुसार रंगमंच की प्रकाश व्यवस्था | Chaturvedi P. |
| 52. काल विमर्श in Sanskrit & French Poetic Reflections | ज्ञानेश्वर शर्मा |
| 53. नैषधमहाकाव्येज्योतिषशास्त्रस्य सिद्धान्तानां वर्णनम् | Dr. Mamta Bhatnagar |
| 54. Sanskrit Works and the Science of Alchemy | डॉ० राजनाथ यादव |
| 55. वाल्मीकि रामायण में विहित चातुर्वर्ण्य व्यवस्था की प्रासंगिकता | डॉ० पूजा मिश्रा |
| 56. A Comparative Scrutiny of some Indian and Western Literary Concepts-Dr. Rajneesh Pandey | डॉ० सुनील कात्यायन |
| 57. समकालीनसंस्कृतकविता के आलोक में लोकगीतविमर्श | डॉ० वशिष्ठ सिंह |
| 58. संस्कृत-वाङ्मये महर्षिकण्वः | अंकिता गोस्वामी |
| 59. भारतीय काव्यशास्त्र में संस्कृत के आचार्यों द्वारा कृतकाव्य | श्रुति शाश्वत उपाध्याय |
| 60. स्वामी प्रज्ञानन्द की संगीतशास्त्रगत अवधारणा | |
| 61. संस्कृत नाट्यशास्त्रीय परम्परा एवं लोकनाट्य | |

संस्कृत साहित्य में पुनर्जन्म की अवधारणा

डॉ. राजेश कुमार बैरवा
बून्दी, राजस्थान

जब भी हम पुनर्जन्म की बात करते हैं। हमारे मन में कई तरह के प्रश्न आ जाते हैं। जैसे— पुनर्जन्म क्या है? वास्तव में पुनर्जन्म होता है क्या? पुनर्जन्म होता है तो किसका होता है? यदि आत्मा का पुनर्जन्म होता है तो मरने के बाद आत्मा कहाँ जाती है और पुनर्जन्म कैसे होता है ? इत्यादि। इन प्रश्नों के समाधान के लिए मन में जिज्ञासा बनी रहती है। इन जिज्ञासाओं को शान्त करने के लिए साक्षात्कृत धर्मा ऋषियों—मनिषियों ने जो अपने पूर्वजों के प्रति कृतज्ञ थे और जो अपने को अतीत की भव्य परम्पराओं से विच्छिन्न होते नहीं देख सकते थे। इस प्रकार की व्यवस्था को जिससे आगे आने वाली पीढ़ियाँ अपने भव्य अतीत से न केवल परिचित हो सकें, प्रत्युत पूर्वजों के अनुभवों से लाभान्वित भी हो सकें, वह संस्कृत साहित्य के रूप में आज हमारे सामने हैं। भारतीय चिन्तन परम्परा में आत्मा अजर-अमर है। वह एक शरीर को छोड़कर दूसरा शरीर धारण करता है। आत्मा का इस प्रकार एक शरीर छोड़कर दूसरा शरीर धारण करना ही पुनर्जन्म है। 'प्रेत्यभावः पुनरुत्पत्तिः' यहाँ से जाकर फिर होना पुनर्जन्म है अर्थात् जिस शरीर को आत्मा एक बार छोड़ देता है उसे फिर प्राप्त नहीं कर सकता। गीता में कहा गया है कि जन्म-मरण के क्रम का न कोई आदि है और न ही कोई अन्त और यह क्रम नेरन्तर जब तक चलता है जब तक कि मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो। जन्म-मरण के अनुक्रमण का कारण बताते हुए कहा है — 'पुनर्जन्मसिद्धिः आत्मनित्यवात्। आत्मा को नित्य जानने से ही शरीरों को छोड़ने और ग्रहण करने का अनुक्रम संभव है। यदि आत्मा अनित्य होता तो शरीर के साथ ही नष्ट हो जाता, फिर उसकी उत्पत्ति कहाँ से होती? क्योंकि स्वरूप से उत्पन्न होकर नष्ट होने वाली वस्तु फिर से अस्तित्व में नहीं आ सकती। ऋग्वेद में उल्लेख है कि आत्मा वायु, जल, प्राण आदि के माध्यम से वीर्य में विष्ट हो जाता है और ईश्वर की प्रेरणा को योनि के द्वारा गर्भाशय में स्थित दस मास तक पूर्ण विकास को प्राप्त हो जाता है और फिर बाहर आ जाता है इसी को जीवात्मा का जन्म लेना कहते हैं। इसके विपरीत 'देहादात्मनो निष्क्रमण मृत्युः। अर्थात् शरीर से जीवात्मा का निकल जाना मृत्यु है। चालू शरीर में प्रारब्ध कर्मों का भोग समाप्त होने पर शरीर का पतन हो जाता है। तब केवल देह का नाश होता है। आत्मा देह को छोड़ जाता है। देह का प्रत्येक अंग अपने कारण में लय हो जाता है। गीता में लिखा है कि जो जन्म लेता है उसकी मृत्यु निश्चित है, जो मरता है उसका पुनर्जन्म सुनिश्चित है "जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः ध्रुवं जन्म मृतस्य च।"

सत्यं सर्वजगन्मूलं, जगदाधारकं परम्। सत्यान्नास्ति परं ज्योतिः, सत्यं धर्मस्य जीवितं।
(कपिलरस्य)

‘पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वतः।’ अर्थात् एक-दूसरे की सर्वथा रक्षा और सहायता करना मनुष्यों का मुख्य कर्तव्य है। संस्कृत वाङ्मय (मत्स्यपुराण एवं महाभारत) में धर्म के सम्बन्ध में कहा गया है कि—धर्मेतिधारणे धातुर्महत्वे चैवमुच्यते। आधारणे महत्वे वा धर्मः स तु निरुच्यते।। अर्थात् धर्म से तात्पर्य ऐसी योजना से है जो सम्मान तथा महत्ता की ऊँचाई तक उठाता है। यह कर्तव्यों का ऐसा जाल है जो मनु की सभी संतानों को सावयवी एकता के सूत्र में बाँधे रहता है तथा उन्हें बिखरने एवं नाश होने से रक्षा करता है। मनुस्मृति में धर्म के दशलक्षण निम्नलिखित रूप में प्राप्त होते हैं— धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणं। वेदों की ब्रह्म वाणी, मनीषियों की अभिव्यक्ति और साहित्यकारों की लेखनी अतीत से वर्तमान तक जिस परम सत्य और यथार्थ का उद्घोष करती आई है, वह मानव जीवन की सार्थकता का ‘आत्मकेन्द्रण’ से परे ‘परमार्थ’ की स्वीकृति पर मुहर अंकित करती है। मनुका वंशज मानव वस्तुतः ब्राह्माण्ड का सर्वश्रेष्ठजीव इसलिए स्वीकार किया जाता है, क्योंकि उसमें ‘पर’ का भाव भी निहित होता है। उपनिषदों का दर्शन, भगवद्गीता का आत्मवाद और पुराणों का अध्यात्मवाद मानव जीवन की सार्थकता के जो अपरिहार्य तत्व व्याख्यायित करते हैं, वे अपने गर्भ में समाहित ‘पर’ के भावों का प्रकटीकर मानव जीवन की अस्तित्वमयता का लक्ष्य, महत्ता एवं उपादेयता, अभिव्यक्तकर प्रकाशस्तम्भ बन हमारा पथ आलोकित करने वाले हैं, वही मानव यथार्थ में मानव रूप में स्वीकार किया जाता है, जो मानवीयता से पूर्ण हो, जिस व्यक्ति की अन्तरात्मा में करुणा की कोमल मंदाकिनी प्रवाहित होती हो, जो संवेदनात्मक और सहानुभूति तरंगों से आप्लावित हो।

YOGA IN BANABHATTA'S KADAMBARI

GITANJALI DEVI
GUWAHATI

The very etymological sense of the word ‘Yoga’, which comes out of the Sanskrit root ‘yuj’, means - to unite, is equivalent to the English word ‘yoke’. The word Yoga is derived as yuj + ghya (yujyate anena iti yogah). All schools of Indian spiritual thought, orthodox and unorthodox, employ one or more approaches of Yoga, which they may define in different ways or use relative to different philosophical backgrounds. Yogic methods can be found in all branches of Indian spiritual and religious literature, whether the Vedas,

Epics, Puranas, Agamas and Tantras, as well as in many special Yogic texts or *Yoga Shastras*. The integrative approach of *Yoga* pervades the culture of India as well, including its literature, drama, music, dance, science, medicine and even in grammar. The '*Kadambari*' of Banabhatta also falls in this category as it also says about various yogic systems. This paper tries to explain the role of *Yoga* in various stages of Banabhatta's *Kadambari* in the light of patanjali's *yogasutras*.

“संस्कृतसाहित्य के माध्यम से नैतिक और व्यावहारिक ज्ञानप्रसार”

डॉ० बिनोद कुमार सिंह

जिला - पूर्वी चम्पारण (बिहार)

वस्तुतः नैतिक और व्यावहारिक ज्ञान ही मानव को मानव की संज्ञा से अभिहित करने का सामर्थ्य रखता है, अन्यथा मनुष्य की गणना बिना पुच्छ विषाण वाले पशुओं में की जाती है। आज केवल भारत ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व नैतिक एवं व्यावहारिक ज्ञान से प्रभावित होने वाले चारित्रिक अवमूल्यन की समस्या से जूझ रहा है। मानवता का द्वारा सर्वत्र दर्शनीय है।

परन्तु वर्तमान समय में यह देखा जा रहा कि लोग पहले की अपेक्षा ज्यादा पढ़-लिख गये बी० ए०, एम० ए० पास कर गये लेकिन सोचने और व्यवहार करने का स्तर पहले से गिर गया है। अभी की स्थिति है—

शिष्य कहाँ शिष्टता उसकी

दुर्भाग्य मेरा वो जो पाठ पढ़ा है।

ज्ञानी गुरुजन की महिमा—

गरिमा सब आज पाताल गया है।।

इस नैतिक और व्यावहारिक ज्ञान की कमी का एक ही कारण है कि हमारा समाज संस्कार से सम्बलित संस्कृतसाहित्य से दूर हो गया है एवं जो कुछ जानता भी है तो आचरण में नहीं उतार रहा। यदि समाज के लोग संस्कृत साहित्य के नैतिक एवं व्यावहारिक ज्ञान को अपने जीवन में उतारें और इसका प्रसार करते रहें तो सम्पूर्ण जीवन अवश्य ही सुखमय रहेगा।

संस्कृत साहित्य एवं विज्ञान

श्रीमती शीला यादव

लखनऊ

संस्कृत में आज भी धातु विज्ञान से संबद्ध अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हैं। प्राचीन भारत के ऐसे वैज्ञानिक वाङ्मय की जानकारी पाश्चात्य जगत को देने हेतु श्री ब्रजेन्द्रनाथ शील, प्रफुल्लचन्द्र राय आदि शोध विद्वानों ने अंग्रेजी में जब अनेक ग्रन्थ लिखे तथा विभिन्न

शोध संस्थाओं ने ऐसी पाण्डुलिपियों की समय-समय पर खोज की तो आधुनिक विज्ञान जगत को इस बात का एहसास हुआ कि भारत में हजारों वर्षों से विज्ञान की विभिन्न शाखाओं पर कितना चिन्तन होता रहा है। अर्वाचीन युग वैज्ञानिक युग कहलाने लगा है। दुर्भाग्यवश बहुतों की यह धारणा है कि विज्ञान सब कुछ कर सकता है और संसार की अन्य सभी वस्तुओं से विशेष महत्वपूर्ण है।

इसके विपरीत मुगल काल, अंग्रेज काल में राजाश्रय को तरसने वाले आयुर्वेद की प्रगति के मार्ग अवरुद्ध हो गये। इन सैकड़ों वर्षों की अवधि में विपरीत स्थितियों से जूझते हुए आयुर्वेद जैसे-तैसे अपना अस्तित्व बचाकर रख पाया। संस्कृत में श्रेष्ठ साहित्य का भण्डार तो है ही, साथ ही विस्तृत वैज्ञानिक साहित्य का बहुमूल्य सारगर्भित भण्डार भी इसमें निहित है। जिस काल में पाश्चात्य सभ्यता अपनी शैशवावस्था में थी, उस समय भार में वेदों, उपनिषदों की रचना हो चुकी थी।

ये वेद वे ज्ञान वे वृक्ष थे जिनसे ज्ञान, विज्ञान और दर्शन की अनेक शाखाओं का जन्म हुआ। दर्शन का उच्च कोटि का आध्यात्मिक चिन्तन इसमें निहित है। “वसुधैव कुटुम्बकम्” की भावना से अधिक अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना के लिए शिक्षा कहा जा सकता है।

धर्मशास्त्रकालीन शिक्षा-प्रणाली

डॉ. हरकेश बैरवा
बून्दी (राज.)

प्राचीन भारतीय ऋषि-मनीषियों ने अनुभव किया कि सुसंस्कृत, सुसम्पन्न एवं सुदृढ़ सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने के लिए बालक को शिक्षा-दीक्षा एवं आचार-व्यवहार का ज्ञान देना नितान्त आवश्यक है, क्योंकि शिक्षा (विद्या) ही चारित्रिक दूषणों को दूर कर व्यक्तित्व को निर्मल एवं प्रभावशाली बनाती है। जिस प्रकार गहरी खदानों से निकला पाषाणरूपी हीरा भली-भाँति तराशने पर ही प्रकाशोज्ज्वल बहुमूल्य हीरे के रूप में कायित होता है, उसी प्रकार जड़, अबोध एवं अज्ञानी मानव भी शिक्षा प्राप्त करके ही परिष्कृत एवं परिमार्जित होता है। शिक्षा शब्द ‘शिक्ष्’ विद्यापादाने धातु में ‘अ+टाप्’ प्रत्यय लगाने से निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ किसी विद्या को सीखने या सिखाने की क्रिया एवं गुरु के निकट विद्याभ्यास या विद्या का ग्रहण करना है अर्थात् जिस प्रणाली से व्यक्ति विद्या ग्रहण करता है, उसे शिक्षा कहते हैं। आप्ते ने शिक्षा का अर्थ अध्ययन करना, अध्यापन कराना तथा किसी कार्य को करने के योग्य होने की इच्छा या निष्णात् होने की क्रिया से लिया है। शिक्षा की गणना छः वेदांगों में की जाती है और उसे वेद की नासिका माना है। डॉ. राजबली पाण्डेय के अनुसार शिक्षा शुद्ध उच्चारण (ध्वनिक) का शास्त्र है। स्वर और व्यंजनों का शुद्ध उच्चारण शब्दों के अर्थ का ठीक-ठीक बोध कराता है। मंत्रों के ठीक उच्चारण से ही उनका मनोवांछित प्रभाव पड़ता है। धर्मशास्त्रकालीन गुरुकुल शान्ति, सदाचार, शिक्षा, शिक्षार्थी, शिक्षक आदि के लिए आदर्श

एवं मर्यादाओं के मूर्तरूप थे। विद्यारामाप्ति के उपरान्त शिक्षार्थी विद्या में निपुण, प्रखरबुद्धि वाला, कर्तव्य में आदर्शनिष्ठ, शक्ति में बलसम्पन्न, व्यवहार में कुशल तथा चरित्रवान बनते थे, इसी कारण तत्कालीन भारतीय जन जीवन धार्मिक, नैतिक, आध्यात्मिक, भौतिक, शारीरिक आदि रूपों में समृद्ध रहता था। आधुनिक समय में विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों एवं अन्य शिक्षण संस्थाओं में अध्ययन-अध्यापन कार्य होता है, परन्तु यहाँ गुरुकुल की भाँति उपनयन संस्कार की अनिवार्यता, निःशुल्क शिक्षा, एकता की भावना, अविवाहित रहने का प्रतिबन्ध, गुरुसेवाभाव, गुरु एवं शिष्य का सम्यक् सम्पर्क, अनुशासन, स्वावलम्बन आदि गुणों का अभाव देखा गया है, जिसके कारण समाजिक सरोकारों में कमी आ रही है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली ऐसी हो जिससे मनुष्य के हृदय में विद्यमान निकृष्ट भावना का परिमार्जन होकर उसकी बुद्धि, शरीर एवं मन पवित्र बन सके।

सांस्कृतिक सामाजिक एवं राजनैतिक सन्देश की नवीन दिशा
(प्रो. राजेन्द्र मिश्र कृत अभिराज सहस्त्रकम् के शतककाव्य परम्परा के परिप्रेक्ष्य में)

डॉ. भूपेन्द्र कुमार
राठौर कोटा

संस्कृत अर्वाचीन शतककाव्य परम्परा में सर्वविधा के मूर्धन्य विद्वान् प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र विशिष्ट स्थान रखते हैं। उनकी रचनाधर्मिता संस्कृत विद्वानों के मध्य कमलिनी सदृश मुख की शोभा अनवरत् बनी रहती है। प्रो. राजेन्द्र मिश्र कृत 'अभिराजसहस्त्रकम्' में संकलित 10 शतक काव्यों में जीवन व जगत् के विविध आयाम को प्रस्तुत किया है। इन शतक काव्यों में भारतीय जीवन दृष्टि के सांस्कृतिक-सामाजिक एवं राजनैतिक सभी पक्ष उभर कर सामने आते हैं। अपनी प्राचीन भारतीय परम्पराओं गौरवपूर्ण अतीत, ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्यों और तत्कालीन जीवनदर्शन का तो कवि साक्षात्कार कराता है, समसामयिक घटनाक्रमों और वर्तमान जीवन की विद्रूपताओं व विडम्बनाओं का भी वर्णन करता है। संस्कृत भाषा के प्रति कवि की अभिव्यक्ति संस्कृत की विरासत चिन्ता, चिन्तन व चेतना के रूप में मुखरित हुई है। सांस्कृतिक समानता के अन्तर्गत आध्यात्मिकता, धार्मिकभावना, राष्ट्रियभावना से युक्त सन्देश मानवीय जगत् के लिए प्रेरणास्पद है। सामाजिकता के परिप्रेक्ष्य में वर्तमान समाज में व्याप्त विसंगतियाँ, संस्कृति का ह्रास, धर्मान्धता या धार्मिक विद्वेष, समाज में नारी की स्थिति, लोक जीवन की अभिव्यक्ति मानव मन को उद्वेलित करती हुई उसे नवीन दिशा की ओर प्रेरित करती है। राजनैतिक सन्देश रामराज्य की अवधारणा को प्रस्तुत करता है। संस्कृत हमारी संस्कृति की भाषा है और वही हम भारतीयों को सर्वविध उद्धार कर सकती है। जो देववाणी संस्कृत से द्वेष करते हैं उनका किसी भी प्रकार से कल्याण नहीं हो सकता है। भारत भूमि पर पुनः संस्कृत के निर्विघ्न बढने और शिखरस्थ होने की कामना कवि करता है

—सर्वा भाषाः प्रवर्धन्तां निर्विघ्नं संस्कृतान्विताः। वैदुषी शिखरस्थ स्याद् भारतस्य यथा भुवि।।

‘धुक्षते हा धरित्री’ महाकाव्य में युग चेतना

आरती पुण्डीर
आगरा

चेतना शब्द (स्त्रीः) (√चित्+युच्+टाप्) संज्ञा, बोध। समझ, सजीवता, जान। बुद्धि, विवेक। (संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ) चेतना बुद्धि अथवा मानस की एक विशेषता या शक्ति है जिससे जीव या प्राणी की आन्तरिक अनुभूतियों, भावों, विचारों और बाह्य घटनाओं या तत्वों का अनुभव होता है। व्यापक रूप में चेतना सत्य, शाश्वत्, सनातन तथा सृष्ट और असृष्ट सम्पूर्ण जगत् की मूल क्रियात्मक शक्ति है। दर्शन में इसे ‘नित्यो नित्यानाम् चेतनश्चेतनामामेको बहूनां यो विदधाति कामान्’ इन शब्दों में अभिव्यक्त किया गया है। चेतना समस्त प्राणियों की जीवनशक्ति है। ज्ञान, अनुभूति एवं क्रिया के आधार पर इसके कई रूप होते हैं।

“संस्कृत पत्रिकाओं में प्रकाशित हास्य कविताएँ”

—तारेश कुमार शर्मा

संस्कृत वाङ्मय में प्राचीन विषयों तथा विज्ञान, साक्षात्कार, आधुनिक संस्कृत-साहित्य आदि नूतन विषयों और शैलियों का मन्जुल समन्वय प्राप्त होता रहा है। परन्तु हास्य सामग्री का सङ्कलन एवं प्रकाशन गौण रूप में ही रहा है। इस दिशा में अनेक संस्कृत-पत्र-पत्रिकाओं की ओर ध्यान जाता है जिनमें हास्य-विषयक कविता, निबन्ध आदि प्रकाशित किये जाते रहे हैं तथापि एकमात्र हास्य रस को प्रकाशित करने वाला ‘उच्छृंखलम्’ प्रथम पत्र था।

इनके अतिरिक्त सहृदय हृदय संवादिनी रचना के धनी डॉ. रमाकान्त शुक्ल के ‘अर्वाचीनसंस्कृतम्’ में प्रकाशित हास्य अनूठे हैं। हास्य जगत् में प्रशस्यमित्र शास्त्री (रायवरेली) का योगदान भी कम नहीं है। आपने सभी विषयों पर हास्य रचनाओं के माध्यम से संस्कृत जगत् की बड़ी सेवा की है। आपकी रचनाएँ ‘गाण्डीवम्’ एवं ‘पारिजातम्’ आदि पत्रिकाओं में वर्षों से प्रत्येक अंक में प्रकाशित होती रही हैं तथा पाठक इन्हें बड़े चाव से पढ़ते रहे हैं। उदाहरण के लिए चुनाव के समय मतपेटिका पर यह रचना ध्यान देने योग्य है—

दीनं करोति राजानं विद्वांसं मूर्खमेव च।

माहात्म्यं मतपत्रस्य को न जानाति भारते।।

मूकं करोति वाचालं पंगु लङ्घयते गिरिम्।

राजयोगी प्रदात्री सा नमस्या मतपेटिका।।

अंत में 'विश्वसंस्कृतम्' पत्रिका में प्रकाशित डॉ. रमेशचन्द्र का कथन उपयुक्त प्रतीत होता है कि— "हास्यं विना मानवस्य जीवनं शुष्कं नीरसं च वर्तते। इदानीं चिकित्सा मनोवैज्ञानिकाः हास्यस्य महत्त्वं जीवनेऽपरिहार्यतयाऽङ्गीकुर्वाणा दृश्यन्ते।"

मैं अपने इस शोध पत्र के माध्यम से संस्कृत पत्रिकाओं में प्रकाशित हास्य कविताओं पर प्रकाश डालने का प्रयास करूंगा जिससे कि संस्कृत पत्रिकाओं में प्रकाशित हास्य रचनाओं के विषयगत वैविध्य को समझा जा सके।

**‘सिंधुकन्या’ उपन्यास के माध्यम से श्रीनाथ श्रीपाद हसूरकर जी
का सामाजिक व राजनीतिक सन्देश**

**दुर्गेश कुमारी
आगरा**

साहित्य अकादमी द्वारा सन 1984 में सर्वोत्कृष्ट कृति के रूप में सम्मानित श्रीनाथ श्रीपाद हसूरकर कृत संस्कृत उपन्यास 'सिंधुकन्या' न केवल ऐतिहासिक उपन्यास है अपितु, आठवीं शताब्दी में घटित मुहम्मद बिन कासिम द्वारा सिन्ध देश पर आक्रमण के समय समाज में व्याप्त कुरीतियों से अवगत कराने वाली शोभनीय कृति है। इस उपन्यास में हसूरकर जी ने 8वीं सदी की सामाजिक व राजनीतिक स्थिति का अत्यन्त मार्मिक उल्लेख किया है। समाज में व्याप्त परम्पराएँ, रीति-रिवाज, रूढ़ियाँ, कुरीतियाँ जैसे-सतीप्रथा, अन्धविश्वास, नारी का शोषण यहाँ तक कि धर्म का वह स्वरूप जो इसकी जड़ में था जैसे-अबोधिकता, अविवेक इत्यादि को आधुनिक दृष्टिकोण में परिवर्तित कर स्थाई परिवर्तन के साथ सकारात्मक सोच, शिक्षा, दृढ़ इच्छा शक्ति, धर्म-रक्षा तथा नैतिकता व सदाचरण का सन्देश दिया जिससे मनुष्य इस प्रकार का आचरण करे जो सामाजिक कल्याण के अनुरूप हो। सिन्धुकन्या-सूर्यदेवी व परमल देवी के चरित्र के माध्यम से वर्तमान नारियों को जाग्रत करने का प्रयास किया है कि चाहें कितनी भी विषम परिस्थिति हो कभी निराश नहीं होना चाहिए। अंधेरे में भी उजाले के लिए निरन्तर प्रयास करना चाहिए। इसी प्रकार राजनीतिक स्थिति में भी हसूरकर जी ने उल्लेख किया है कि परस्पर राजनैतिक बैर करने के कारण छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित देश पर ही कोई न कोई विदेशी आक्रमण करने में सफल होता है। अतः अखण्डता में भी एकता होनी चाहिए। साम्राज्यवादिता को समाप्त कर राष्ट्रप्रेम व देशभक्ति का भाव हृदय में समाहित करने का सन्देश दिया है।

पुराण में वर्णित सृष्टि तत्त्व का वैज्ञानिक अनुशीलन

डा० स्वर्ण रेखा
बोधगया

निष्कर्षतः पुराण में सृष्टि तत्त्व का विवेचन बड़ा ही वैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत है। सृष्टि में सत्त्व, रजस् और तमस् ये तीन गुण पाये जाते हैं। ये तीनों गुण पृथ्वी के वक्षः स्थल में शान्तावस्था या साम्यावस्था में रहता है। परस्पर विरोधी स्वभाव के होने कारण इनमें आपसा में संघर्ष होता रहा है, और शान्तावस्था भंग होती रहती है। सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ में ये गुण कम या अधिक मात्रा में विद्यमान हैं। सभी पदार्थ सुखः दुःख एवं उदासीनता उत्पन्न करने की क्षमता रखता है। एक ही पदार्थ से किसी को सुख मिलता है, किसी को दुःख और कोई उसके प्रति उदासीन रहते हैं। इस प्रकार ये तीनों गुण परस्पर भिन्न होते हुए आपसा में सहयोग द्वारा सृष्टि का निर्माण करते हैं।

विज्ञान भी मानता है कि लाखों करोड़ों वर्ष पूर्व चारों तरफ केवल पानी ही पानी था। सूर्य और तारों के घर्षण से कोई टुकड़ा गिरने के कारण पृथ्वी का निर्माण हुआ। लाखों वर्षों बाद पानी से जीव-जन्तु बने। हजारों वर्षों बाद मानव की उत्पत्ति हुई आदि अनेक तथ्यों को बताता है। समुद्र में जीव-जन्तु की उत्पत्ति कैसे हुई इस पर विज्ञान आज भी मौन है।

यदात्वभेदविज्ञानं जीवात्मपरमात्मनौ : । भवेत्तदा मुनिश्रेष्ठ पाश्छेदोऽपरात्मनः ।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पुराण सृष्टि के मूल में एक सर्वशक्ति सम्पन्न सत्ता को स्वीकारता है। उसी के नियमानुसार सृष्टि का संचालन होता है, जो विभिन्न नामों से अभिहित है।

शल्य चिकित्सा के आदिम स्रोत-वेद

डॉ० शैलेश कुमार मिश्र
झारखण्ड

वेद सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान के आदिम स्रोत हैं। अष्टांग आयुर्वेद का प्रधान अंग शल्यतंत्र भी वेदों में, विशेषतः अथर्ववेद में वैशद्येन आख्यात है। महर्षि सुश्रुत ने शल्यतंत्र की प्रधानता स्वीकारते हुए कहा है - अष्टास्वपि आयुर्वेदतंत्रेषु एतदेवाधिकमभिमतम् (सुश्रुतसंहिता सूत्र 01/18) वेदों में शल्यक्रिया विषयक कई प्रसंग प्राप्त होते हैं जिनसे यह प्रमाणित होता है कि शल्यतंत्र का विशिष्ट ज्ञान हमारे ऋषिकुल को था। ऋग्वेद में महर्षि दधीचि का सिर काटकर अश्व का सिर प्रत्यारोपित कर देने का उल्लेख है। अश्विनी कुमारों ने मधुविद्या का ज्ञान प्राप्त कर पुनः दधीचि के मानुष सिर को प्रत्यारोपित कर दिया। ऋग्वेद में ही विश्पला नाम की स्त्री की क्षतिग्रस्त जंघा के स्थान पर लौहमयी जंघा लगा देने का विवरण मिलता है। अथर्ववेद के मूत्रमोचन सूक्त में मूत्रनिस्सारण के

लिए शलाका प्रवेश क्रिया का उल्लेख मिलता है जो आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के Catheter लगाए जाने के तुल्य है। हृदय में अवस्थित नाडियों की सहस्राधिक शाखाओं का उल्लेख कठोपनिषद् और प्रश्नोपरिषद् में मिलता है। प्रसवक्रिया में योनिभेदन की चर्चा अथर्ववेद में है। महर्षि सुश्रुत ने शल्यक्रिया के प्रसंग में मर्म स्थलों की चर्चा की है। मर्म का अर्थ है वह स्थान जहाँ उपघात से मरण हो — मरण कारित्वान्मर्म — वाग्भट। मारयन्तीति मर्माणि—डल्हण। सुश्रुत का मानना है कि मर्मों में स्वभावतः प्राण रहते हैं। सुश्रुत ने 107 मर्मस्थलों की चर्चा की है, साथ ही यह बतलाया है कि मर्म का सम्यक् ज्ञान ही शल्यतंत्र का आधा ज्ञान है। अर्थात् कुशल शल्यचिकित्सक को मर्म की सम्यक् जानकारी होनी चाहिए। मर्मविज्ञान का ज्ञान होने पर प्राणघात से रक्षा करते हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म शल्यक्रिया संपादित की जा सकती है। अतः हमारे मर्मविज्ञानी ऋषिकुल को निश्चयेन शल्यतंत्र का विशद और विस्तृत ज्ञान होगा जो वेदों में प्रतिबिंबित है।

रामानुजीय मत में ब्रह्म, जीव तथा जगत् के सम्बन्ध का वैज्ञानिक विवेचन

स्वाति शर्मा
आगरा

रामानुजाचार्य वैष्णव मत के आचार्यों के शिरोमणि हैं। इनकी आराध्या “श्रीजी” है। इनका सम्प्रदाय “श्री सम्प्रदाय” है। रामानुजीय वेदान्त का सिद्धान्त “विशिष्टाद्वैत” है। इसका तात्पर्य है—“विशिष्टयोरद्वैतम्” अर्थात् विशिष्ट कारण और विशिष्ट कार्य की एकता सूक्ष्मचिदचिद् विशिष्ट ब्रह्म कारण है और स्थूल चिदचिद् विशिष्ट ब्रह्म कार्य है, अर्थात् दोनों अवस्थाओं में एक है। अतः विशिष्टाद्वैत है।

इस प्रकार इन सभी तथ्यों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि भिन्न स्वरूपों तथा स्वभावों वाले ऑक्सीजन (O_2), ऑक्साइड (O) तथा ओजोन (O_3) मूल निर्माणक तत्त्व एक ही है। उसी प्रकार भिन्न स्वभाव तथा स्वरूपों वाले ब्रह्म, जीव तथा जगत् में भी अद्वैत है। सम्पूर्ण सृष्टि का मूल कारण ब्रह्म ही है। संसार में जीवों के स्वभावों तथा क्रियाओं में जो भेद द्रष्टव्य होता है उसका कारण अन्य तत्त्व—बुद्धि, अहंकार, सत्त्वरजतम गुणत्रय, इन्द्रियों तथा कर्मों आदि की धनात्मक या ऋणात्मक मात्राओं पर आधारित है। इस प्रकार ब्रह्म सत्, चित् तथा आनन्द रूप शाश्वत है तथा जीव और जगत् ब्रह्म के विशेषण हैं। ब्रह्म इनसे विशिष्ट है अतः इनका सम्बन्ध विशिष्टाद्वैत है।

Man and Society : A Ramayanic Perspective

Vishwanath.M.V.
Research Scholar,
Dept.of Sahitya, SVDV,
BHU, Varanasi.

Man is a social animal. He is an integral part of the society he dwells in. The influence of an individual on the society and the vice-versa of it is an ever-lasting process. In modern times, due to the egoistic approach in the lifestyle, the society and its people are undergoing many changes in and around them. The crime rate is soaring at ever high. And the problems like child and women harassment, terrorism are increasing every day. As it has been the case with earlier times, it is the literature that must steer the ship forward. With the rich legacy and abundance, both quantity and quality wise, Sanskrit literature is undoubtedly one of the frontrunners that there can be in leading the modern society into peace and prosperity.

Ramayana, composed by sage Valmiki, thousands of years ago, even though may seem outdated on first look, but, still consists enough material in it to lead the society forward. Ramayana is "A poetry for all ages". From Mahatma Gandhi ji to the present day statesman, every one dreams and epitomizes the state of art and politics incorporated at the time of king Rama as "Ramarajya". The social well-being of a man lies truly in leading a life which compliments not only his personality but also the society he lives in. This paper aims at defining a few attributes found in Ramayana of Valmiki such as nation over self, truthfulness and unharmed the natural balance with a view on the effects these attributes may have on man and society when brought to practice in everyday life.

कविशिरोमणिभट्टमथुरानाथशास्त्री की ऐतिहासिक कथाएँ: एक परिचय

अर्चनावर्मा
अलीगढ़

आधुनिकसंस्कृतसाहित्य की अनेकविधाओंमेंकथा-साहित्य महत्त्वपूर्णस्थान रखताहै। देवर्षिभट्टमथुरानाथशास्त्री जीकाकथा-साहित्य ऐतिहासिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिकप्रणय एवंप्रतीकात्मककथाओंमेंविभक्त है। उन्होंने इन कथाओं के माध्यम सेसमाज के विभिन्न पक्षों को अपनी लेखनी से उकेरा है। श्री शास्त्री जी की ऐतिहासिककथाओंकापरिचय हमअपने शोध पत्र के द्वारा प्रस्तुत कर रहे हैं। इतिहाससेसम्बन्धितइनकथाओंमेंअलक्षयेन्द्र-दस्यु, वीरबालक, वीरपरीक्षा, अङ्गुलिमाल, अत्याचारि-परिणाम, धन्योऽसिधर्मवीर, बालवीर, सिंहदुर्ग-सिंहवियोगऔरपुरुषपरीक्षाआदिहैं।

जिनमें बुद्ध और अङ्गुलिमाल के संवाद की घटनासे लेकर सिकन्दर और पोरस के युद्ध, सोमनाथमंदिर के ध्वंस, पृथ्वीराजराणासांगा, अकबर, उदय सिंह, शक्ति सिंह, हमीर और औरंगजेबकालीन राजाओं आदि मुगलकालीन घटनाओं तक की कहानी प्रस्तुत की गई है।

बौद्ध दर्शन में अनात्मवाद

डिम्पल
आगरा

सम्पूर्ण भारतीय दर्शन में अर्थात् वेद उपनिषद् गीता एवं षड्दर्शनों में आत्मा की सत्ता को किसी न किसी रूप में स्वीकारा गया है। उपनिषदों में आत्मा और ब्रह्म का तादात्म्य माना गया है। न्याय-वैशेषिक में आत्मा को चेतन-द्रव्य के रूप में तथा सांख्य-दर्शन में आत्मा की व्याख्या पुरुष के रूप में हुई है। शांकर वेदान्त में आत्मा और ब्रह्म को एक माना गया है, परन्तु बौद्ध दर्शन में आत्मा की व्याख्या क्षणिकवाद के आधार पर किया गया है। क्षणिकवाद सिद्धान्त प्रतीत्य समुत्पाद सिद्धान्त पर आधारित है। अतः प्रतीत्यसमुत्पाद से ही अनात्मवाद फलित होता है। बौद्धों का मत है कि भगवान् तथागत ने अनात्मवाद का उपदेश किसी स्वतन्त्र दार्शनिक सिद्धान्त के रूप में नहीं दिया, परन्तु कालान्तर में यह एक स्वतन्त्र सिद्धान्त के रूप में मान्य हो गया। पाली निकायों ने अनात्मवाद की किरणें बुद्ध के नैतिक आदर्शवाद से प्रस्फुटित हुई हैं जब बुद्ध स्मृति प्रस्थानों का वर्णन करते हैं, चार आर्य सत्त्यों का निदेशन करते हैं प्रतीत्यसमुत्पन्न धर्मों की अनित्यता और दुःखमयता दिखाते हैं उन्हें अपने शिष्यों को अनाशक्तिवाद सिखाते हैं उन्हें इन्द्रिय संयम में लगाते हैं उसी समय वे अनात्मवाद के निस्पण में भी संलग्न दिखाई पड़ते हैं। बौद्ध दर्शन के अनुसार बुद्ध का अनात्मवाद उद्देश्यपूर्ण है। अनात्मवाद का उपदेश भिक्षुओं के अभिमान को नष्ट करने के लिए दिया गया है। अनात्म के ज्ञान हो जाने पर भिक्षुओं को सही धर्म प्रतीत होने लगता है, बुद्ध का मत है कि — अनित्य को देखने से मनुष्य का मान नष्ट हो जाता है दुःख को देखने से उसकी इच्छाओं की शुद्धि होती है और अनात्म को देखने से उसे सम्यक्दृष्टि मिलती है। बौद्ध दर्शन में अनात्मवाद सिद्धान्त को पुद्गलप्रतिषेधवाद कहा जाता है। बुद्ध की सम्मति में आत्मा को प्रमाणित नहीं किया जा सकता है और उसे प्रत्यक्ष ही देखा जा सकता है। अतः आत्मा का अस्तित्व नहीं है।

आश्चर्य चूड़ामणि में अद्भुत रस की अभिव्यंजना

डॉ. अपर्णा शर्मा
झाँसी

‘आश्चर्य चूड़ामणि’ नाटक के प्रणेता शक्तिभद्र है जो केरल प्रदेश के निवासी थे। आश्चर्य चूड़ामणि के कथानक का मूल स्रोत वाल्मीकि रामायण है। किन्तु वाल्मीकि

रामायण के कथानक एवं आश्चर्य चूड़ामणि के कथानक में पर्याप्त अन्तर है। शक्तिभद्र ने अपने नाटक में वाल्मीकि रामायण के अरण्यकाण्ड से युद्धकाण्ड तक के कथानक को लिया है। आश्चर्य चूड़ामणि नाटक में शक्तिभद्र ने रामवनगमन से लेकर सीता अग्निपरीक्षा एवं राम-सीता का अयोध्या पुनः वापसी तक की घटनाओं का संक्षिप्त वर्णन किया है। इस अवधि में राम जीवन में अनेक घटनायें हुई हैं, शक्तिभद्र ने उनमें से कुछ विशेष घटनाओं को अपने नाटक का विषय बनाकर अपनी नाट्य प्रतिभा का वैशिष्ट्य प्रदर्शित किया है। आश्चर्य चूड़ामणि के शीर्षक से ही विदित होता है कि शक्तिभद्रकृत इस नाटक में आश्चर्य प्रसंगों का प्रयोग बहुतायत है। नाटक की मुख्य कथा— “आश्चर्य चूड़ामणि के प्रभाव से रावण का कपटवेश के उद्घाटन में अंगभूत अद्भुत रस ही है।” नाटक में शूर्पणखा का रमणी के रूप में उपस्थित होना, मारीच का स्वर्णमृग रूप, रावण व सारथि का राम एवं लक्ष्मण के रूप में एवं सीता जी को वनवास में भी आभूषणमण्डिता प्रतीत होना, ऋषियों, द्वारा आश्चर्य रत्न प्रदान करना आदि प्रसंगों के कारण ही सम्पूर्ण नाटक में अद्भुत रस की धारा आद्यन्त प्रवाहित है। इस प्रकार शक्तिभद्र ने सम्पूर्ण नाटक में अपने पात्रों के माध्यम से अद्भुत रस की अभिव्यंजना की है। शक्तिभद्र ने अपने नाटक का कथानक का मूलाधार तो वाल्मीकि रामायण को लिया है किन्तु उसके कथानक में स्थान-2 पर अद्भुत रस का पुट दिया है जो कथानक को गति प्रदान करता है, दशकों में कौतुहल उत्पन्न करता है साथ ही साथ कथानक में नूतनता का समावेश भी करता है।

मोहनलाल पाण्डेय के चित्रकाव्य की चारुता

डॉ. मधुबाला शर्मा
राजस्थान

‘चित्तं राति’ इति चित्रम् अर्थात् चित्त को आकर्षित करने वाला तत्त्व ‘चित्र’ कहलाता है। व्यापक रूप में चित्र का अर्थ विचित्र, असाधारण या अद्भुत है। चित्रकाव्य में वर्णविन्यास की विचित्रता ही सुधीजनों को आकर्षित करती है। चित्रकाव्य का व्यवस्थित स्वरूप प्रतिपादित करने वाले प्रथम आचार्य रूद्रट हैं तथा सर्वप्रथम महाकवि भारवि ने चित्रकाव्य का चमत्कार अपने महाकाव्य में प्रकट किया। राजस्थान में चित्रकाव्य लिखने वालों में गद्य गथुरानाथ शास्त्री, नित्यानन्द शास्त्री, आशुकवि हरि शास्त्री, आचार्य जगदीश, पं. मोहनलाल पाण्डेय जैसे कुछ अंगुलीगण्य विद्वान् हैं जिन्होंने चित्रकाव्य की चारुता से विद्वानों को आह्लादित किया। अपरा काशी के रूप में विख्यात जयपुर में लब्धजन्मा मोहनलाल पाण्डेय की प्रमुख कृतियाँ रसकपूरम्, पत्रदूतम्, पद्मिनी, ‘नतितति’ इत्यादि हैं। पाण्डेय की काव्य शैली से मोहित सनातन कवि डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेद ने आपको ‘अभिनव बाण’ की उपाधि दी तथा अन्य ने आपकी अद्भुत काव्य शैली को ‘मारवाणी शैली’ की संज्ञा दी। पाण्डेय ने अपनी विशिष्ट काव्य शैली से न केवल राजस्थान के अपितु सम्पूर्ण

भारत के विद्वानों को आह्लादित किया, फलतः आपको राष्ट्रपति सम्मान, वाचस्पति पुरस्कार, श्री वाणी अलंकरण, माघपुरस्कार तथा अन्यान्य कई पुरस्कारों से अलंकृत किया गया। पाण्डेय ने विशेष वर्ण संयोजन द्वारा प्रथम चित्रकाव्य-पद्य का निर्माण अपनी प्रथम कृति 'रसकपूरम्' के मंगलाचरण में किया है। जहाँ श्लोक के प्रत्येक चरण के प्रथम वर्ण को जोड़ने पर कृति का नाम 'रसकपूरम्' प्रकट होता है :-रसाधरं रासरसैकसारं सरोजनेत्रं रसिकैकगम्यम्। कविं रसज्ञोऽनुसराभि शौरिं पूरं रसानां रसराजराजम्॥ स्तुतिपरक काव्यों का विकास अनेक रूपों में हुआ। चित्रकाव्य की दृष्टि से एकशब्दालंकार युक्त अनेक शब्दालंकार इत्यादि। मोहनलाल पाण्डेय ने नागरी वर्णमाला के प्रत्येक व्यंजन को नायक बनाकर 'नतितति' नामक स्तुति परक काव्य लिखा जिसे विद्वानों ने 'एकाक्षर चित्रकाव्य' की संज्ञा दी है, यथा वर्णमाला के प्रथम वर्ण 'क' को आधार बनाकर लिखी गई कृष्ण स्तुति -

कालिन्दीकूलकेलिः कुरुकुलकदनः कानने काम्यकुंजे
केकाभिः कीर्त्यमानः कलितकरुणया कुंजरं कान्तकायम्।
कुर्वन् क्रीडन् कदम्बे कनककटककृत्किङ्किणीक्वाणकान्तः
कृष्णः कल्याणकारी कलयतु कुशलं केशवः कंसकालः॥ पाण्डेय की परम्परा को अग्रसर करते हुये आपके सुपुत्र प्रो. ताराशंकर शर्मा 'पाण्डेय' ने भी युग्मक प्रस्तुत किया है जिसमें अद्भुत वर्णविन्यास द्वारा सम्पूर्ण वर्णमाला को गुम्फित किया गया है यथा -
कः खेऽगमद् घातकरोऽङ्घ्रिचारी छद्मीव जीमूतझलांचलोऽयम्।
टङ्कारकृष्टक्कुरङ्गिम्भट्टौकोऽणुतुण्डथूत्कारदिशा धरित्रीम्॥
निर्दिश्य पीयूषफलं बिभिक्षे भूताधिपो मोहितयातुधानः।
रम्भाप्तिलोभाद् वरशेमुषीकः षाड्गुण्यसङ्गेन हतात्मबुद्धिः॥

इस प्रकार चित्रकाव्य की चारुता से प्राचीन एवं अर्वाचीन सभी विद्वान् चमत्कृत हैं।

वेदभाष्यकार-श्रीसायणाचार्यस्य अलौकिकदृष्टिः

संजीवनी आर्या
वाराणसी

वेदभाष्यकारेषु अन्यतमः मूर्धन्यः श्रीसायणाचार्यः वसुधातले रविरिव विरराज। सर्वविदितमेतत् आचार्यसायणरय प्रसिद्धिः प्रतिभासम्पन्नमहान्भाष्यकाररूपेण वर्तते। विद्वत्सु पाण्डित्यदृष्ट्या विवेचनकौशलदृष्ट्या अद्वितीयस्थानं वरीवर्ति। आचार्यसायणः भारद्वाजगोत्रीयः कृष्णयजुर्वेदीयब्राह्मणः। वेदभाष्यनिरूपणे सति भूमिकायां विद्यातीर्थरूपेण गुरुं स्वीकरोति -

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थ महेश्वरम्॥

अस्त पितुः नाम मायणः मातुः नाम श्रीमती चास्ति।

अलौकिकदृष्ट्या परिपूर्ण आचार्यसायणस्य वेदभाष्यः विद्वत्समाजेषु अथ च उत्तरवर्ती वेदभाष्यकारैः भूयसा प्रशंस्यते यतोहि वेदार्थनिरूपणे आचार्यसायणेन शिक्षा-कल्प-व्याकरण-निरुक्त-छन्द-ज्योतिषादिभिः षडङ्गैः सहितं भाष्यकार्यं परमप्रामाणिकम् उद्दत्तकृतम्। व्याकरणप्रक्रियाद्वारा शब्दानां व्युत्पत्तिः शब्दसिद्धिः स्वरसिद्धिः वेदभाष्यस्य अलौकिकदृष्टिं दधाति। अथ च याज्ञिकप्रक्रिया वेदस्यात्मा इति अवलम्ब्य यज्ञाः वेदस्य प्रधानरूपेण स्वीकृताः अत एव याज्ञिकविधानस्य सम्यक् ज्ञानं विना न सम्भवः वेदभाष्यः। आचार्यसायणः याज्ञिकविधानस्य पूर्णज्ञाता यतोहि अस्य भाष्यकार्यं शास्त्रानुकूलं प्रामाणिकञ्च दृग्गोचरं याति।

आचार्यसायणस्य वैदिकसाहित्यजगति अक्षुण्णकीर्तिः सर्वासु दिक्षु तनोति। तस्य कार्यं “न भूतो न भविष्यति” इदमेव कारणमस्ति यत् आचार्यसायणः पूर्ववर्ती-उत्तरवर्ती-भाष्यकाराणां मध्ये रविरिव विद्योतते। आचार्यसायणस्य अलौकिकदृष्टिं दृष्ट्वैव पाश्चात्यविद्वान् मैक्समूलरमहोदयेन उक्तम्— आचार्यसायणस्य भाष्यकार्यं “काणस्य दण्डवत्” विद्यते इति। वेदभाष्यकार-आचार्यसायणस्य अलौकिकदृष्टि इति अवलम्ब्य अहं शोधपत्रं प्रस्तौष्यामि।

सामाजिक तनावमुक्ति में महाभारत के कतिपय सन्दर्भः
प्रासंगिकता एवं उपयोगिता की दृष्टि में

जितेन्द्र कुमार तिवारी
वाराणसी

संसार में प्रायः दो प्रकार की धारारें देखी जाती हैं, एक धर्म एवं मोक्ष अवलम्बित निवृत्तिमार्गी धारा अपर अर्थ और काम पर अवलम्बित प्रवृत्तिमार्गी धारा, किन्तु भारतीय परम्परा पुरुषार्थचतुष्टय के मंजुल समन्वय पर आधारित है। महाभारत भारतीय संस्कृति का आकर ग्रन्थ है जिसमें तत्कालीन सभी सांस्कृतिक, साहित्यिक आदि विषयों का समन्वय है। इसमें चतुर्वर्ग के सभी विषय धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष प्रतिपादित हैं। कृष्णद्वैपायन भगवान् वेदव्यास ने कहा भी है — धर्मार्थकामः सममेव सेव्यः यो ह्येक सक्तः स नरो जघन्यः। इसी प्रकार से आदि स्रोत वेद में भी प्राप्त होता है— न स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः यद्यच्छरीरमादत्ते तेन तेन स रक्षते। हमारी संस्कृति में वैदिक ज्ञान का उपबृंहण इतिहास एवं पुराणों के माध्यम से मानी जाती है। वेद में निहित ज्ञान इतिहास एवं पुराणों में पुष्ट होता है। कहा भी गया है— इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्। महाभारत वैदिक ज्ञान का परिपाक है जहाँ उच्च आध्यात्मिक आदर्श से लेकर मानव जीवन की जटिलताओं का समाधान प्राप्त होता है। मानव के आधिदैविक, आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक त्रिविध प्रकार के कष्टों का निवारण इस विशालकाय ग्रन्थ में देखा जा सकता है। महाभारत में स्वयं इस तथ्य का उल्लेख है— धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ। यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित् ।। इस ग्रन्थ में बुढ़ापा, मृत्यु, भय, रोग और पदार्थों के सत्यत्व और मिथ्यात्व का विशेष रूप से निश्चय किया गया है तथा अधिकारी

भेद से भिन्न-भिन्न प्रकार से धर्मों एवं आश्रमों का लक्षण भी बताया गया है जो अत्यन्त सामाजोपयोगी है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों वर्णों के कर्तव्यों का विधान, न्याय, शिक्षा, चिकित्सा आदि का भी इसमें विशद निरूपण है। समाज में उचित अनुचित व्यवहार की शिक्षा सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने का उपयोगी मार्ग, राजनीतिशिक्षा कृत्य अकृत्य का विवेकादि का दृष्टान्त महाभारत के अतिरिक्त और कहीं भी एक साथ सुलभ नहीं हो सकता। समाज में मनुष्य को किस प्रकार जीवन व्यतीत करना चाहिये जिससे वह सुखपूर्वक एवं तनावमुक्त रहे उसमें महाभारत की क्या भूमिका है इसका विचार में अपने शोधपत्र में प्रस्तुत करूंगा।

अध्यात्मरामायणस्थरसविवेचनम्

योगेश चन्द्र परगाई
वाराणसी

प्राचीनतमशब्देषु अन्यतमोऽयं रस शब्दः। भारतीय संस्कृतवाङ्मये रस इति शब्दस्य प्रयोगः तत्तत्छास्त्रेषु भिन्न-भिन्न रूपेण लभते। सामान्यतः रस इति पदस्य प्रयोगः चतुर्षु अर्थेषु कृतमस्ति। मधुरादिरसाः, आयुर्वेदस्य रसः, साहित्यशास्त्रीयः रसः, मोक्ष उत वा भक्तिरसः। एतेष्वत्र साहित्यशास्त्रीयस्य रसस्य चर्चा विहिता अस्ति। साहित्यशास्त्रे रसरस्य सामान्यार्थः काव्यानन्दः, काव्यास्वादो वा वर्तते। कथं रसस्योत्पत्तिर्भवति इत्यस्मिन् विषये सर्वप्रथमोल्लेखः आचार्यभरतस्य प्राप्यते।

विभावानुभावसंचारीसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।

एतदवास्ति सम्पूर्णस्य रससिद्धान्तस्याधारभूतं स्थलम्। अस्यैव भरतसत्रस्य परवर्तिभिराचार्यैः स्वधिया व्याख्या कृता, तस्मादेव उत्पत्यनुमितिभुक्त्यभिव्यक्तिवादानां विकासोऽभभवत्। आचार्य मम्मटोऽपि लौकिकानां कार्यकारणसहकारीणां काव्ये विभावानुभावव्यभिचारिरूपेण प्रयोगः, तथा च विभावादिभिरभिव्यक्तः हृदस्थः स्थायीभावः रसपदेन व्यपदिष्यते इति मनुते। व्यवहारदशामनुभूय प्रायः सर्वैराचार्यैः काव्येऽष्टरसाः स्वीकृताः।

काव्येषु रसस्य महत्त्वम् — भारतीय काव्यशास्त्रस्य सूक्ष्म अध्ययनेन स्पष्टीयते यत् काव्येषु यत् स्थानं रसस्य वर्तते तन्नास्ति कस्यचिदन्यस्य। यद्यपि भरताचार्येण नाट्ये अभिनयापेक्षाऽस्य विवेचनं गौणत्वेन कृतं यस्माद्धि कतिपया आचार्याः रसस्यान्तर्भावो अलंकारादिषु कृतवन्तः तथापि परवर्तिन आचार्याः काव्ये रसस्यैव सर्वस्वं स्वीकृतवन्तः तथा चालंकाराणां गौणत्वं प्रतिपादितवन्तः। रसवादिनः सर्वथैव अंगरूपेण रसं कदापि न स्वीकुर्वन्ति। नाट्यशास्त्रेऽपि रसस्य अनिवार्यधर्मता भरतेन स्वीकृता। भामहोऽपि रस विषयेऽवादीत् यद्यथा कट्वौषधः मधुरसंयोगेन भक्षणीयो भवति तद्वै रसरूपीमधुबलात् कट्वौषधरूपीशास्त्रचर्चा सौकर्येन ग्रहणीया भवति। रुद्रटानुसारेण तु रस एव काव्यशास्त्रयोः विभाजकः। सरसं काव्यं, रसविहीनं शास्त्रमिति।

अध्यात्मरामायणे रसाः— एम्बिधस्य, काव्येषु प्रमुखस्य रसस्य विनिवेशोऽध्यात्मरामायणाख्ये ग्रन्थे सम्यक्तया समुपलभ्यते। सप्तकाण्डेषु विभक्तेऽस्मिन् ग्रन्थे शृंगारादिसमेसां रसाणां

परिपाको वर्तते। यथा— सुग्रीवेण सह मित्रतायाः पश्चात् सुग्रीवः श्रीरामं सीतायाः आभूषणानि दर्शितवान्, तन्विलोक्य सीताविषयकः विप्रलम्भशृंगारः तत्र दृश्यते। अन्यत्र अयोध्याकाण्डस्य सप्तमे सर्गे मुनिकुमारस्य मृत्युसमसंचारेण दुःखितयोः मातापित्रोः विलापः करुण रसरस्य परिचायको वर्तते। एवमेवान्येषामपि रसाणां योजना ग्रन्थेऽस्मिन् विद्यते, स्वशोधपत्रे तानहमं विस्तरेण प्रदर्शयामि।

संस्कृत साहित्य में नवाचार

डॉ० प्रयाग नारायण मिश्र
लखनऊ

‘आचारः परमो धर्मः’ कहकर स्मृति ग्रन्थों में जिसे परम धर्म के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है वह वैदिक धर्म से ही प्रतिष्ठित संस्कृत साहित्य का आचार शब्द आ उपसर्गपूर्वक चर् धातु में घञ् प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है जिसके विविध अर्थ संस्कृत साहित्य में प्रोक्त हैं। आचार शब्द के विविध अर्थों में आचरण, व्यवहार, काम करने की रीति, चाल-चलन, प्रथा, रिवाज, लोकाचार आदि अर्थ प्रमुख हैं। इसी आचार शब्द में नवीन अर्थवाचक ‘नव’ विशेषण का प्रयोग करके ‘नवाचार’ शब्द की निष्पत्ति होती है। अतः नवाचार से अभिप्राय ऐसे आचरण, व्यवहार, काम करने की रीति, चाल-चलन, प्रथा, रिवाज तथा लोकाचारों से है जो केवल प्राचीन काल में ही नहीं प्रत्युत आज के प्रगतिशील समाज के उत्थान के लिए उपयोगी है।

वस्तुतः भारतीय संस्कृति इतनी व्यावहारिक, प्रासङ्गिक तथा सामासिकी संस्कृति है कि उसे देखकर ऐसा लगता है कि बहुत से ऐसे सार्वभौमिक, सार्वकालिक तथा सार्वनिष्ठ आचार हैं जो प्रत्येक काल, प्रत्येक परिस्थिति तथा प्रत्येक स्थान के लिए सदैव इतने मङ्गलकारी हैं कि वे कभी भी पुराने प्रतीत न होकर सदैव नये ही प्रतीत होते रहते हैं। उदाहरणार्थ एक कल्याणकारी प्रगतिशील समाज के लिए सत्य, अहिंसा, दया, दान, प्रेम-सौहार्द, ज्ञान-विज्ञान, श्रम-उद्योग, आरितिकता, त्याग-समर्पण, कर्म-कौशल, श्रद्धा-विश्वास, धन-सम्पत्ति, सुख-समृद्धि आदि की उपयोगिता जिस प्रकार जितनी आदिकाल में या वैदिक-समाज में थी उतनी ही उपयोगिता उनकी आज भी आधुनिक समाज में है। अतः इन्हें केवल आचार के रूप में न जानकर प्रत्येक काल-खण्ड में नवाचार के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। आचार सङ्क्रमण सृष्टि का एक नैसर्गिक धर्म है। किसी एक समय में किसी समाज में प्रचलित कोई आचार किसी दूसरे समाज में उस समय भले ही ग्राह्य न हो परन्तु कालचक्र के नैसर्गिक प्रवाह से किसी दूसरे कालखण्ड में उसी समाज में वह ग्राह्य हो जाया करता है। इसीलिए मनुस्मृति में सदाचार की परिभाषा करते हुए कहा गया है—

यस्मिन् देशे य आचारः पारम्पर्यक्रमागतः।

वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते॥

पाश्चात्य संस्कृति का अन्धानुकरण करने वाले भौतिकवादी समाज में यदि दया-दान-धर्म-श्रद्धा-समर्पण-प्राचीन आचार होकर भी नवाचार के रूप में गृहीत न होते तो आज समाज में प्रायः दया-दान-धर्म-श्रद्धा-समर्पण के नये-नये द्रष्टान्त भी सुनने को न मिलते।

अत्यधिक तीव्र गति से निरन्तर उत्थान के पथ पर अग्रसर भारतीय समाज के मूल में प्राचीन मानवमूल्य ही सफलता का रहस्य बनकर स्थित हैं। यही कारण है कि आज के समाज में व्याप्त या प्रचलित अनेक नवाचार जो हमें नये प्रतीत होते हैं। वे संस्कृत साहित्य में किसी न किसी रूप में प्राचीनकाल से ही विद्यमान हैं। ये शाश्वत मूल्य एवं सार्वभौमिक, सार्वकालिक तथा सार्वनिष्ठ मान्यताएँ ही साम्प्रतिक समाज के उत्थान तथा वैश्वीकरण का आधार हैं। इन्हीं नवाचारों को आधार बनाकर प्रस्तुत शोधपत्र को समलंकृत करने का प्रयास किया गया है।

The Prenatal Sacraments for Women as Treated in the *Kaushikasūtra* of the *Atharvaveda Samhitā*-A Study

Sri Pranab Jyoti Kalita
Guwahati

Practical needs conduct the thinking of a man and leads him to act accordingly and these actions, through the flow of time and civilization are transformed into culture. The Vedas, being the earliest source of knowledge of all kind, supply such cultural information of a remote past. Of the four Vedas, the *Atharvaveda* is exception by the nature of its contents. Unlike the other three Vedas, it deals with the day to day lives of the common people and hence, it is the *Veda* of practical performance par excellence. The ritualistic applicability of this *Veda* can be well understood only with the help of the *Kaushikasūtra*, the *Samhitāvidhi* of the *Atharvaveda*.

Begetting a son was regarded as one of the prime duties of the Vedic people and it was the woman through whom they could beget a child. Hence, they offered special care to her during her pregnancy to ensure the safe delivery of a son. The practices, observed during the time, right from her conception till delivery are going to be discussed in this paper in order to understand the attitude of the then society toward the forthcoming child and the child giving mother.

वेदों में वृक्ष

कु० सुदीप
अलीगढ़

भारतीय संस्कृति के इतिहास में वेदों का स्थान अत्यन्त गौरवपूर्ण है। श्रुति की दृढ़ आधारशिला के ऊपर भारतीय धर्म तथा सभ्यता का भव्य विशाल 'प्रासाद' प्रतिष्ठित है।

लौकिक वस्तुओं का साक्षात्कार करने के लिए जिस प्रकार नेत्र की उपयोगिता है, उसी प्रकार अलौकिक तत्वों के रहस्य को जानने के लिए वेद की उपादेयता है। इष्ट प्राप्ति तथा अनिष्ट-परिहार के अलौकिक उपाय को बताने वाला ग्रन्थ वेद ही है। हमारी दैनिक प्रार्थना, हमारे देवी देवता, हमारी उपासना, हमारे अनुष्ठान, हमारे पर्व, हमारे यज्ञ, हमारी मान्यताएँ तथा हमारी परम्पराएँ सभी वेदों से प्रभावित हैं। अतः हमारी प्रत्येक धारणा एवं विचारणा का मूल स्रोत वेद ही हैं।

चाहें नारियों के अपने स्वामी की दीर्घ आयु का वरदान मांगना हो, या निर्धनों को कुबेर बनने का स्वप्न अथवा विद्यार्थी को विद्या प्राप्ति की कामना हमें इन सब के लिए वेदों की शरण में ही जाना पड़ता है।

प्रकृति, भारतीयों के लिए सदा-सदा से पूजनीय रही है, चाहें कान्ति प्राप्ति के लिए सूर्य नारायण का पूजन हो अथवा हमें जीवन प्रदान करने वाली नदियों की उपासना हो। नदी, सागर, हवा, सूर्य, चन्द्र, वायु से सभी हमारी आस्था का स्रोत रहे हैं। हमने तो वृक्षों तक से वरदान मांगना अपनी संस्कृति में समाहित कर लिया है। प्रकृति के अनेक वृक्षों का समय-समय पर पूजन करके हम यश एवं कीर्ति के अनुगामी बनते हैं।

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं अर्जुन से कहा है कि वृक्षों में मैं पीपल हूँ।

अतः प्रस्तुत शोध पत्र में पीपल, तुलसी, केला, आँवला, अशोक, वट, बेर, इत्यादि वृक्षों के पूजन एवं महत्त्व पर विस्तृत चर्चा की जायेगी।

महायान सूत्रालंकार में त्रिकायवाद की अवधारणा

कविता शर्मा

ए०एम०यू० अलीगढ़

महायान बौद्ध दर्शन में त्रिकायवाद एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है। स्थविरवादियों ने त्रिकाय के विषय में कुछ विशेष नहीं किया। क्योंकि वे तथागत बुद्ध को साधारण मानव स्वीकारते हैं। परन्तु कुछ स्थानों पर बुद्ध धार्मिक नियमों का समुह भी बताया गया है। सर्वास्तिवादी आचार्यों तथा महायानियों ने त्रिकाय के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया महासांघिकों ने परिश्रम कर तीनों कार्यों की आध्यात्मिक रूप में विवेचना प्रस्तुत की।

प्रारम्भिक महायानी ग्रन्थों में दो कार्यों का ही उल्लेख हुआ है जिनके नाम निर्माण काय तथा धर्मकाय है। स्थविरवाद, सर्वास्तिवादी और महायान सूत्रालंकार में त्रिकायवाद का उल्लेख प्राप्त होता है।

महायान के सिद्धान्तों में त्रिकाय

महायान और हीनयान में त्रिकाय के सिद्धान्त को लेकर मतभेद है। स्थाविरवादियों ने तथागत बुद्ध को अर्हत सम्यक ज्ञान-सम्पन्न तथा धर्मोपदेशक के रूप में स्वीकार किया है।

स्थविरवादी मत में त्रिकाय

तथागत की वक्कलि के प्रति की गई उक्ति—अलंवक्कलि किं ते पूतिकयेन दिट्ठेन। यो खो वक्कलि धम्मं परससति सो मे परससति। यो मे परससति सो धम्मं परससति।

इसी प्रकार सर्वारितवादी आगम ग्रन्थों में बुद्धकाय का विवरण धर्म—राशि के रूप में प्राप्त होती है। पालि ग्रन्थों तथा आरम्भिक महायानसूत्रों जैसे—लंकावतार, ललितविस्तार सुवर्णप्रभास आदि में ये धर्मकाय, निर्माणकाय और सम्भोग काय के स्वरूप का वर्णन प्राप्त होता है।

मीमांसा में वाक्यार्थ बोध

सपना यादव

ए०एम०यू० अलीगढ़

पद से ही पदार्थ का ज्ञान होता है। पुनः पदार्थों के अन्वय से वाक्यार्थ ज्ञान होता है। अतः पदों से मिलकर ही वाक्य बनता है।

वाक्यार्थ ज्ञान के विषय में मीमांसा दर्शन के आचार्यों की दो भिन्न विचार— धाराएँ हैं— (1) अभिहितान्वयवाद (कुमारिल भट्ट) (2) अन्विताभिधानवाद (प्रभाकर गुरु)

अभिहितान्वयवाद

पदार्थ के ही ज्ञान से वाक्यार्थ बोध होता है। वाक्यार्थ बोध के लिए आचार्य कुमारिल भट्ट तात्पर्य शक्ति की अनिवार्यता स्वीकार करते हैं।

आकांक्षा योग्यता, सन्निधि से युक्त पद समूह वाक्य कहलाता है और इसी का तात्पर्य शक्ति से अन्वय होकर वाक्यार्थ बोध होता है।

अन्विताभिधानवाद

आचार्य प्रभाकर गुरु के अनुसार कोई भी शब्द पृथक् रूप से अर्थान्वित नहीं होता किन्तु जब किसी वाक्य में शब्द एक—दूसरे के साथ समन्वित होते हैं तो उससे अर्थान्वित या अर्थयुक्त हो जाते हैं। अतः इस मत में वाच्य ही वाक्यार्थ है। इसी को अन्विताभिधानवाद कहते हैं।

वाच्य एव वाक्यार्थ इति अन्विताभिधानवादिनः।

यथा = “गाम् आनय”

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि “अग्निहोत्रं जुहयात् स्वर्गकामः” अग्निहोत्र याग करने से स्वर्ग मिलता है। तात्पर्य यह है कि पदों से पदार्थों का ज्ञान होता है और पदार्थों से वाक्यार्थ—बोध होता है।

आचार्य कुन्तक की दृष्टि में औचित्य

सरदार सरबजीत सिंह

वाराणसी

जहां आचार्य कुन्तक ने ‘वक्रोक्ति’ को काव्य के महनीय सिद्धान्त के रूप में प्रतिष्ठित कर अपनी मौलिकता का पूर्ण परिचय दिया है, वहीं उन्होंने काव्यशास्त्र के एक

अन्य महत्वपूर्ण सिद्धान्त 'औचित्य' की भी उपेक्षा नहीं की है । उन्होंने औचित्य का उल्लेख काव्य-रचना के हेतुभूत तीनों मार्गों — सुकुमार, विचित्र एवं मध्यम के अनिवार्य (साधारण) गुण के रूप में किया है । इस औचित्य का सम्बन्ध रस तथा प्रकृति (स्वभाव) के साथ नितान्त घनिष्ठ है । उनका मानना है कि औचित्य का प्रधान कार्य अर्थ या रस का उन्मीलन करना है । इसी क्रम में इन्होंने पदगत, अर्थगत एवं प्रकृतिगत औचित्य का निरूपण किया है ।

आगे चलकर उन्होंने वृत्तौचित्य की ओर भी संकेत किया है जो या तो कैशिकी आदि नाट्यवृत्तियों से सम्बद्ध है अथवा उपनागरिका आदि अनुप्रास-जातियों से । इस दूसरे औचित्य को इन्होंने वर्ण-वक्रता का नाम दिया है । इसी में कुन्तक ने अनुप्रास, यमक आदि शब्दालंकारों का भी अन्तर्भाव माना है । इस विवेचन पर आनन्दवर्धन द्वारा व्याख्यात अलंकारौचित्य की छाया स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है । इसी प्रकार कुन्तक ने प्रत्यय, लिंग, स्वभाव, कालवैचित्र्य आदि विविध प्रकार की जिन वक्रताओं का विश्लेषण अपने ग्रन्थ में किया है, वह औचित्य के ही विविध प्रकारों का निदर्शन है । वास्तव में वक्रोक्ति औचित्य का ही नामान्तर है जिसे कुन्तक ने स्वयं स्वीकार किया है —

तत्र पदस्य तावदौचित्यं बहुविधभेदभिन्नो वक्रभावः । स्वभावस्यांजसेन प्रकारेण परिपोषणम् (औचित्यम्) एव वक्रतायाः परं रहस्यम् । (वक्रोक्तिजीवित, 1.57 की वृत्ति)

आधुनिकमहाकाव्य उत्तरनैषधीयचरितम्मेंवर्णितप्रस्तुतआदर्शनारीचरित

दुर्गाउपाध्याय
अल्मोड़ा

गोस्वामीपं. भैरवगिरी शास्त्री प्रणीतउत्तरनैषधीयचरितम्महाकाव्य के 22 सर्गोंमेंनल-दमयन्ती के जीवन भागकाउत्तरकथानक एवं उन के पौत्रचंद्रागंदकासिंहासनारूढ़ होनेतक की कथावर्णितहै। कथावस्तुका स्रोतमहाभारतमेंवर्णितनलपर्व59-78अध्याय एवंस्कन्दपुराण के ब्राह्मणखण्डअन्तर्गतब्रह्मोत्तरखण्डहै,प्राचीनकालसेहीनारीकाभारतीय समाजमेंउच्चस्थानथा। इननारियोंमेंदमयन्तीकाचरित्रआदर्श एवं अग्रणी है। महाकाव्य की मुख्य स्त्री पात्र दमयन्ती के चरित्र की अनेकविशेषताओंकोकवि ने अपनीलेखनीकाविषय बनायाहै।दमयन्तीपतिव्रतानारी एवंआदर्शपत्नीहैवहनल के सुख-दुख की सहभागीहै, नल द्वारापिता के घरजाने के आग्रहकरनेपरवहकहतीहै।"आपइसनिर्जनवनमेंहिंसकपशुओं के बीचआश्रयहीनहोकररहेंऔरमैंअपनेपिता के महलमेंसुखपूर्वकनिवास करूँ"। नारीकेवलअबला नहीं वहअपनेचरित्र की स्वयं रक्षाकरनेमें सक्षमहै, हिंसकपशुओं के बीचनिर्जनवनमेंअकेलेरहना, अपनेवचनोंसेव्याध कोजड़ पदार्थकरदेनाउसकेइसी

रूपको प्रकट करता है। शास्त्री जी ने नारीकोमर्यादा, नीति, नम्रता शालीनता, पवित्रता आदि के रूपमें प्रस्तुत किया है। नारी-पुरुष समानता के पक्षधर है, एक ओर राजानल राज-काज चलाने में दक्ष थे, वहीं दूसरी ओर दमयन्ती स्त्री समाज के लिए एक दर्पण थी। उसने स्त्रियों के लिए अनेक ऐसे कार्य किये जिसे उन्हें आत्मनिर्भर होकर जीने के अवसर मिले, वह घर के चारदीवारी तक सीमित न रहकर घर के बाहर अपनी योग्यता का पदर्शन कर सकें। दमयन्ती के चरित्र के समान, त्याग, शील, शान्तिप्रतिव्रता क्षमा, व्यवहार-पटुता, साहस शौर्य आदि गुणजगत के इतिहास में एक साथ मिलना कठिन है। इनका जीवन-चरित्र वर्तमान स्त्री समाज के लिए पथ-प्रदर्शक है, इसे अपनी लेखनी का विषय बनाकर कवि ने अनेकों उपदेशों को समाज तक पहुँचाया है।

“आधुनिक भारतीय सामाजिक जीवन में पुरुषार्थ चतुष्टय की अपरिहार्यता”

डॉ० पूनम
बुलन्दशहर

मानव विधाता की सर्वोत्कृष्ट कृति है। मनुष्य से श्रेष्ठतर जीवन-यापन की कामना स्वाभाविक है। अतएव सृष्टि के अरुणोदय काल में ही कालदृष्टा भारतीय ऋषियों ने मनुष्य को श्रेष्ठ जीवन व्यतीत कर परमतत्त्व परमात्मा की प्राप्ति के ध्येय से भारतीय दर्शन में धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष रूपी पुरुषार्थ चतुष्टय का सिद्धान्त प्रस्तावित किया। भारतीय संस्कृति में पुरुषार्थ सम्बन्धी जीवन दर्शन प्रतिमानों में ही आध्यात्म व भौतिकता के समन्वय की तेजस्वी परम्परा निहित है जो सदा भारतीय जनमानस को अनुप्राणित करती रही है तथा भ्रष्टाचार, पापाचार, उच्छृंखलता और विद्वेष से ग्रसित वर्तमान नागरिक जीवन में पुरुषार्थ चतुष्टय का सिद्धान्त आकाशदीप के समान पथप्रदर्शक है।

पुरुषार्थ सिद्धान्त समाज के प्रति मनुष्य की कर्तव्य-भावना का उद्घोषक है। पुरुषार्थ चतुष्टय के सिद्धान्त का आचरण करने पर मनुष्य के व्यक्तित्व का समुचित विकास तो होता ही है साथ ही समाज का भी बहुमुखी उत्कर्ष होता है। इसमें सामाजिक जीवन के सभी पक्षों — आध्यात्मिक, आर्थिक, काम एवं मोक्ष का विवेचन सम्मिलित है। व्यक्ति धर्मपूर्वक आर्थिक व्यवस्था का संचय करे, संचित व्यवस्था से अपनी कामनाओं का त्यागपूर्वक जीवन सुख का भोग कर परमानन्दरूपी मोक्ष का अनुभव करे। पुरुषार्थ चतुष्टय का सिद्धान्त व्यक्ति के व्यक्तित्व की महत्ता, विकास एवं अन्तिम ध्येय पर ध्यान देता है। जब राष्ट्र के नागरिक जागरूक व सदाचारी होंगे तो उनसे बना समाज भी स्वतः ही उन्नत व सदाचारी होगा। वैयक्तिक और सामाजिक कल्याण का साधन पुरुषार्थ चतुष्टय का सिद्धान्त वर्तमान दिग्भ्रमित नागरिक जीवन के लिए अत्यन्त उपादेय है।

इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्रकारान्तर में मानव व्यक्तित्व की चतुष्फलकीय व्याख्या करते हैं। यह मानवीय स्वभाव को मार्क्स, फ्रायड, एडलर, जुंग,

जेम्स आदि विदेशी विचारकों द्वारा एकांगिक रूप से केवल एक वृत्ति विशेष से आवद्ध करने के विरुद्ध प्रबल प्रतिवाद प्रस्तुत करता है। अतः पुरुषार्थ पुरुष के समानुपातिक सर्वांगीय व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब है— न केवल आदर्श रूप में अपितु यथार्थ रूप में भी।

विदुरनीति तथा मानवाधिकार

डॉ० शैल कुमारी तिवारी
जमशेदपुर

महर्षिव्यास विरचित महाभारत मानवीय मूल्यों के मणि-माणिक्यों से मंडित तथा सबके नैतिक मूल्य को समान महत्त्व प्रदान करने वाला अपूर्व आचार शास्त्र है। इसमें कुरुक्षेत्र जैसे धन-जन संहारक युद्ध की पुनरावृत्ति से भावी पीढ़ी को बचाने की शुभ संकल्पना से ही मानवाधिकारों के उल्लंघन से हुए भीषण युद्ध का वर्णन किया गया है। इस अपूर्व ज्ञान कोष में मानव, पशु-पक्षी, जल-स्थल और वन से संबंधित सभी समस्याओं का समुचित समाधान है। उद्योगपर्व में साम्प्रतिक सर्वसमस्याओं के समाधान संदर्भक, अध्यात्म, धर्म तथा नीति के विषय विवेचक विदुर द्वारा धृतराष्ट्र को न्यायपथ पर आरुढ़ होने की शिक्षा दी गई है। इन्होंने मानव मन में नित्य रहने वाले छः शत्रुओं—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद तथा मात्सर्य को नियंत्रित करके पापों से निर्लिप्त रहने की युक्ति बताई है। वस्तुतः मानवाधिकार का हनन मानव मन में रहने वाले इन्हीं दोषों के कारण ही होता है। स्व-पर की संकीर्ण वृत्ति ही समस्त अनर्थों की उत्पादिका है। विदुर पाप-पुण्य आदि कर्मों का तदनुसार ही फल की प्राप्ति बताकर धृतराष्ट्र से धर्मतः पाण्डवों को राज्याधिकार सौंपने की शिक्षा देते हैं, क्योंकि उन्होंने पाण्डवों को बचपन से ही कष्ट पहुँचाया है। यही कारण है कि उन्हें बार-बार दुःख देने की प्रवृत्ति में ही कौरवों की रुचि हो गई है। वह समाज में इस अधार्मिक कृत्य के लिए अपमान का पात्र बनते हुए भी स्वयं को इस जघन्य अपराध से पृथक् करने का प्रयास नहीं करते हैं। इस अवसर पर महात्मा विदुर उन्हें भावी विपत्तियों से सावधान करते हुए कहते हैं कि आप ने और आपके पुत्रों ने लोभ-वृत्ति तथा ईर्ष्या से ग्रस्त होकर धर्मात्मा युधिष्ठिर को वन में भेज कर अत्यंत अधर्माचरण किया है। धर्मराज, जो राज्य प्राप्ति के सर्वथा योग्य थे उन्हें अधिकार से च्युत करके और सर्वथा अयोग्य व्यक्तियों को राज्य देकर आप कल्याण के भागी बनने का स्वप्न देख रहे हैं। वस्तुतः युधिष्ठिर ही राज्य प्राप्ति के सर्वथा अधिकारी हैं, किन्तु उनमें नित्य स्थित नम्रता, दया, धर्म, सत्य तथा पराक्रम आदि गुण ही उन्हें दुःख पहुँचा रहे हैं। वह अत्यन्त दुःख सहने के पश्चात् भी आप के प्रति आदर-भाव रखने के कारण ही आपको सम्मान देते हैं, तथापि आपने दुर्योधन, शकुनि, कर्ण और दुःशासन आदि अयोग्य व्यक्तियों को राज्य प्रदान करके अपने कर्त्तव्य का निर्वाह नहीं किया है। आप जैसे अपकारी व्यक्ति का ऐश्वर्य कथमपि अभिवर्द्धित नहीं हो सकता—दुर्योधन सौबले च कर्ण

दुःशासने तथा । एतेष्वैश्वर्यमाधाय कथं त्वं भूतिमिच्छसि ।। प्रत्येक व्यक्ति स्वस्थ, समृद्ध, अनुकूल-प्रियवादिनी पत्नी, वशवर्ती पुत्र तथा अर्थकरी विद्या से विभूषित हो, इसी उद्देश्य से इस शोध-पत्र में विदुर नीति को विन्यस्त किया गया है -अर्थागमो नित्यमरोगिता च प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च । वश्यश्च पुत्रोऽर्थ करी च विद्या षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन् ।।

सहास्तित्वाय शान्तिसूत्राणि (सनातनकवेः कृतीनां विशेषसन्दर्भे)

डॉ० शोभा मिश्रा
कानपुरम्

साम्प्रतमातङ्केन ग्रस्तं सम्पूर्णमेव विश्वं परमाणुगोलके आसीनं नितान्तमेवाशान्तमनुभूयतेऽस्माभिः । विश्वस्मिन् व्याप्ताया अशान्तेः निराकरणायोपाया अवश्यमेव विचारणीया अनुपालनीयाश्च । समसामयिकी- नामेतासां हृदयविदारकाणां घटनानां प्रति दत्तचित्ताः, जागरूकाश्च सन्त्याधुनिकसंस्कृतसाहित्यकाराः । विद्वांसः इमे प्रायेण सर्वासामेवैतासाममानवीयानां घटनानां यथासम्भवं समाधानमप्युपस्थापयन्ति स्वीयासु मर्मस्पृशु कृतिषु । भवन्तीमे उपाया सनातनाः, सार्वभौमाः, सार्वकालिकाश्च । समसामयिकेषु विद्वत्सु संस्कृत- साहित्यकारेषु सनातनोपनामानः काशीस्थाः महामहोपाध्यायाः रेवाप्रसादद्विवेदिनः प्रमुखायन्ते । प्रददतीमे विश्वस्मिन् घटमानाः घटनाः सूक्ष्मेक्षिकया निरीक्ष्य तासां शान्तिपूर्णं समाधानं स्वीयासु कृतिषु । अस्त्येतेषां 'प्रथमं प्रतिपाद्यं' विश्वशान्तिरेव । अत एवोपग्रथितः एभिर्नूतनशान्तिपाठः षट्साहस्रीतिहासात्मके स्वातन्त्र्यसम्भवाख्ये स्वकीये महाकाव्यरत्ने-

शान्तिः स्याद् दिवि, शान्तिरस्तु मरुतां, मार्गेऽस्तु शान्तिर्भुवि,
स्याच्छान्तिः सलिलेषु, दिक्षु च भवेच्छान्तिर्नितान्तं स्थिरा ।

शान्तिः कर्मसु, शश्वदस्तु, करणग्रामेषु शान्तिर् भवेच् -

छान्तिः स्यादमरेषु, शान्तिरसुरेष्व्वास्तां च शान्तिर्नृषु ।। स्वातन्त्र्यसम्भव० - 75 / 139

शान्तिर्धनुषु, शान्तिरुधसि, पयोधारासु शान्तिर्, घटे

शान्तिः पाणिषु शान्तिराननचये शान्तिः सवैश्वानरे ।

शान्तिर्भुक्तिषु, शान्तिरोजसि, दृशोः शान्तिः, श्रवःशष्कुलौ

शान्तिर्वाचि नु, शान्तिरात्मसदने शान्तिर्धरित्रीतले ।। स्वातन्त्र्यसम्भव० - 75 / 140

शान्तिर्भूतचये, कलापरिकरे शान्तिः सविज्ञानके,

शान्तिः शक्तिषु, शान्तिरर्थनिचये, शान्तिः क्रियाकौशले ।

शान्तिर्नौषु च नाविकेषु च पयोराशौ च शान्तिर्, दिशां

व्राते वायुषु गत्वर-स्थिर-नरेष्व्वास्तां च शान्तिर्मतौ ।। स्वातन्त्र्यसम्भव० - 75 / 141

शान्तिपूर्णाया सहास्तित्वाय योगसूत्रेषु निर्दिष्टा यमाः नियमाश्च विश्वमानवैरेवानुकरणीयाः इत्येतेषमुद्घोषः। सनातनकवीनां त्रीणि महाकाव्यानि, एकविंशतिः खण्डकाव्यानि, द्वे नाटके, तिस्रश्च कथाः सुसम्पन्नं कुर्वन्ति संस्कृतसाहित्यस्याकरं । एतासु रामसामयिकमिति वृत्तमधिकृत्य विरचिताः प्रमुखास्सन्ति कृतयः — महाकाव्येषु— 1. स्वातन्त्र्यसंभवम् — 75 सर्गात्मकम्, 6064 पद्यात्मकम्, (भारतवर्षस्य प्रथमस्वतन्त्रता संग्रामात् प्राप्य अन्नाहजारेमहोदयस्य शान्तिपूर्णसत्याग्रहपर्यन्तं महद् विस्तृतमैतिहासिकमिति वृत्तम्)। खण्डकाव्येषु— 1. प्रमथः— (विश्वशान्तेरुपायप्रदः नवकाव्यसंग्रहः), 2. संस्कृतहीरकम्— (काशीहिन्दू विश्वविद्यालयस्य इतिहासात्मकम्) 3. शकटारम् — (दक्षिणाफ्रीका राष्ट्रस्य नेतुः नेल्सनमण्डेला महोदयस्य कारागारात् मुक्तेः प्रतिपादकम्), 4. श्रीरेवाभद्रपीठम्— (अमरकण्टकात् पश्चिमाखिपर्यन्तं भगवत्याः नर्मदायास्तटे निवसतां भरतीयानामुत्कृष्टजीवनम्), 5. मतान्तरम्— (युगविडम्बनाकाव्यम्) 6. शरशय्या— (भीष्मपरिवेदना) 7. सुगतो ब्रवीति— (बुद्धमूर्तिध्वंसभर्त्सना), 8. अमेरिका— (विश्वशान्तये प्रतिबद्धस्यामेरिकादेशस्य वर्णनम्), 9. एतत्तु याचामहे— (विश्वकल्याणाय भगवत्याः सरस्वत्या आराधनम्), 10. विधेर्होमो निषेधानले— (9/11 दिनांके विश्वव्यापारकेन्द्रध्वंसभर्त्सना), 11. रामपरिसंख्या— (रामः कस्येति प्रश्नद्वारा मानवचरित्रस्य वैपरीत्यवर्णना) 12. अहमस्म्यहमेव— (अर्थलोलुपस्य अद्यतनीयस्य मानवस्यामानवीया मनोवृत्तिः), 13. अयि शकुन्तिके! / शकुन्तले!— (शकुन्तलामाध्यमेन बालिकानां कण्टकाकीर्णजीवनवर्णनम्), 14. अयि नीलनदि!— (नीलतटवर्तिनां भौतिकजीवनम्), 15. हरिहरावदानकाव्यम्— (कलिकालजनितदोषाणां विनाशाय लब्धजन्मनां करपात्रस्वामिनां चरितमवदानञ्च), 16. रत्नस्वरूपावदानकाव्यम्— (विश्वकल्याणाय कृतसंकल्पानां द्वारकाशारदापीठद्वयशंकराचार्याणां चरितस्य वर्णनम्), 17. जयेन्द्रसरस्वतीपादावदानम्— (सनातन धर्मा— वलम्बिनां समुद्धाराय निरतस्य स्वामिनोऽवदानवर्णना), 18. नमोनिर्वाचनम्— (2014 तमे वर्षे भारतवर्षस्य प्रधानमन्त्रिणः नरेन्द्रमोदी महोदयस्य विजयवर्णना, शान्तिपूर्णेन सत्तापरिवर्तनेन भारतवर्षस्यादर्शभूतस्य राजनैतिकस्य स्वरूपस्य च प्रतिपादनं) नाटकयोः— 19. सप्तर्षिकाङ्ग्रेसम् — (1977 तमे वर्षे भारतवर्षस्य निर्वाचनमधिकृत्य विरचितः दशांकः समवकारः), कथासु— त्रिपादीति । शोधपत्रेऽस्मिन् सनातनकवीनामुपर्युक्तासु कृतिषु निर्दिष्टानि सहास्तित्वाय शान्तिसूत्राणि संकलय्य समुपस्थापयिष्यामि। सनातनकवीनां नूतनः शान्तिनाटोऽप्यनुध्येय एव

“अभिराजराजेन्द्रमिश्र के कथा—साहित्य में सामाजिक चेतना”

डॉ. साधना कंसलद — श्रीमती अशोक कंवर शेखावत
कोटा, झालावाड़ (राज.)

सामाजिक चेतना अर्थात् समाज से संबंधित चेतना, ज्ञान, समझ, बोध, प्रज्ञा, संवेदनशीलता, विचार—विमर्श अथवा जागरूकता। इतिहास में विद्यमान भूतकाल का

समाज, प्रत्यक्ष चलता-फिरता, जीवन्त-यथार्थ, वर्तमान समाज एवं हमारा परिकल्पित निर्दोष, सुन्दर एवं स्वस्थ भविष्यकालीन समाज एक सहृदय साहित्यकार की दृष्टि में क्या है? समाज के हृदय के साथ एकाकार होने वाला कवि सामाजिक-हृदय के अन्तःस्थल तक जाकर क्या खोज कर लाता है ? उसे क्या दिखाई देता है ? वो क्या देखना चाहता है? उसके द्वारा अनुभूत समाज की सुसंगतियाँ अथवा विसंगतियाँ क्या है ? उसकी समस्याएँ क्या है ? कवि की दृष्टि में उन समस्याओं का समाधान क्या है ? सामाजिक संरचनागत ताने-बाने के प्रति सुधी साहित्यकार की यही दृष्टि उसकी सामाजिक चेतना है। मानव मन की अन्तःचेतना का हठात् साक्षात्कार कर उसकी संवेदनाओं के साथ अपनी अनुभूति को अभिव्यक्ति प्रदान करने वाले कवि अभिराजेन्द्र मिश्र की सामाजिक चेतना अद्भुत है। सांस्कृतिक संक्रमण के इस दौर में प्राचीन एवं अर्वाचीन की समन्वयात्मक संस्कृति के पक्षपाती कवि समाज की विसंगतियों पर प्रहार करते हुए कहते हैं —“समाजोऽयं न शीलमपेक्षते न सौन्दर्यमाद्रियते, न वैदुषीं प्रशंसति, न धनवैभवं गणयति न चरित्रे रिनहयति, न दुराचाराय कुप्यति।” विचित्रा खल्वस्य मूल्याकनपद्धतिः। स्वार्थानुकूलं अवसरमात्रं निभालयत्ययं समाजः। (भग्नपञ्जरः)

सामाजिक दिशाहीनता, स्वच्छन्दता, संवेदनहीनता एवं जड़ता पर प्रहार करते हुए कहते हैं —“का कथा ज्ञानमौढ्यजड़ताग्रस्तस्य समाजस्य? विमुक्तनासारज्जुरिव क्रमेलको नायं पन्थानं समीक्षते। न तस्य कापि विचारसरणिः न वा स्थिरो निर्णयाधारः।” (पुनर्नवा) सामाजिक समरसता की स्थापना के लिए राजनीतिक इच्छाशक्ति के अभाव को व्यक्त करते हुए वे कहते हैं—“अर्थसाम्यप्रयासपेक्षया हृदयसाम्यस्थापनप्रयासः सुकरः उपादेयश्च प्रतिभाति। हन्त, तदेव कार्यं शासनेन, न च क्रियते।” परन्तु गति मन्द ही सही परिवर्तन दिखाई दे रहे हैं। नवीन समाज की संरचना के प्रति कवि आशान्वित हैं— “सम्प्रति समुज्जृम्भते नूतनस्समाजो यत्र मानवः स्वगुणैरेव प्रतिष्ठतो, न पुनः स्वजात्या।” (संकल्पः) भारतीय समाज का ऐसा कोई पहलू नहीं है जो कवि की दृष्टि से अछूता रहा हो। उनकी समस्त कथाएं सहृदय साहित्यानुरागीजनों की हृदयवीणा को झंकृत, मस्तिष्क को मननशील एवं संकल्पों को उद्भूत कर एक सुन्दर समाज की सर्जना का मार्ग प्रशस्त करती हैं। उनकी सामाजिक चेतना दर्शनीय एवं अनुकरणीय है। उनके कथा साहित्य का सामाजिक चेतना के दृष्टिकोण से समीक्षण, समाजोपयोगी एवं अमृतत्व की खोज के लिए निकले सरस्वती के वरदपुत्रों के लिए उत्कृष्ट पथ्य होगा।

HOW TO BEHAVE WHEN WE ARE GUEST (SPECIAL REFERENCE'S FROM “VYASA MAHABHARATHA”)

Dr. ASAVADI SUDHAMA VAMSI
ANDHRAPRADESH.

“Mahabharata” is a book which can be seen even in education of communication skills. Every poem (sloka), every conversation, every explanation, every appreciation and

every application inculcated with communication skills. In modern generation there are no lessons for communications took place in textbooks or in practice. Just by the pressure of elders or as it is the tradition in India looking at elders children are at least acting minimum skills of communication. It is a great vision of our ancient scholars like VALMIKI & VEDAVYASA who visualized the scenario of future eras, they gifted us the great epics RAMAYANA & "MAHABHARATA" which are actually Vedas for common people. By learning these two books we learn how to live. Especially in "MAHABHARATA" there are many things taught by the author which apt to **PRESENT SOCIETY**. Even though one knows everything, suggestions will be given by the friends and relatives due to love and affection. The importance of the speeches can be absorbed and the others should be heard. This is also a peak point of communication skill to suggest someone. Told by Dhoomya to Pandavas in Virata parva of "MAHABHARATA."

श्लोक:-विदिते चापि वक्तव्यं सुहृद्भिरनरागतः। अतोहमपि वक्ष्यामि हेतुमात्रं निबोधत॥ म.भा.वि.पर्व.4अ – 9श्लोक

संस्कृत सूक्तियों में नैतिक और व्यावहारिक ज्ञान का प्रसार

प्रो. ओमप्रकाश बैरवा
झालावाड़
(राजस्थान)

संस्कृत साहित्य ज्ञान-विज्ञान का विशाल भण्डार है। वेदों से लेकर आज तक संस्कृत में लिखित ग्रंथों में जीवन के विविध पक्षों का ज्ञान प्रकट हुआ है। धर्म, दर्शन, अध्यात्मिक के अलावा भी राजनीति, समाज, भूगोल, अर्थशास्त्र, इतिहास, कला और संस्कृति तक का ज्ञान संस्कृत साहित्य में भरा हुआ है। नैतिक और व्यावहारिक ज्ञान तो संस्कृत की गहन अनुभूति वाली सूक्तियों में बहुत अधिक अभिव्यक्त हुआ है। जैसे बिना विचारे काम नहीं करना चाहिए। बिना विचारे काम करने से काम बिगड़ता है और अचानक कोई न कोई संकट या आपदा आ जाती है जिससे व्यक्ति, परिवार, समाज या सम्पूर्ण देश को परेशानी हो जाती है। भारवि ने इस बात के लिए संस्कृत सूक्ति में बहुत सटीक लिखा है :-

“सहसा न विदधीत क्रियामविवेकपरमापदां पदम्।”

वास्तव में व्यक्ति को अपने व्यावहारिक जीवन में अचानक बिना विवेक के कोई कार्य नहीं करना चाहिए। इसी तरह माता और मातृभूमि के महत्त्व को बतलाने वाली एक सूक्ति को व्यावहारिक जीवन में उतारने पर कितनी गौरव की बात है कि स्वयं भगवान राम ने भी लंका से लौटते हुए लक्ष्मण को इस सूक्ति को कहा है :-

“जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।”

जीवन में जननी और जन्मभूमि दोनों स्वर्ग से भी बढ़कर हैं। इन दोनों का सम्मान करने से व्यक्ति महान् बनता है जैसे भगवान् राम महान् बने। 'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्' वाली सूक्ति भी व्यावहारिक जीवन में बहुत महत्त्व रखती है क्योंकि सत्य बोलने से किसी भी व्यक्ति का व्यक्तित्व बनता है। असत्य से व्यक्ति की महिमा घट जाती है। सत्य बोलकर सत्यवादी हरिश्चन्द्र राजा अमरता को प्राप्त कर सकें। अप्रिय सत्य भी नहीं बोलना चाहिए। अप्रिय सत्य से हानि एवं दुर्भाव की उत्पत्ति होती है जो जीवन में कटुता लाती है इसी तरह की अनेकानेक व्यवहार ज्ञान की एवं नैतिक मूल्यों की सूक्तियाँ संस्कृत साहित्य में भरी पड़ी हैं जिनके अध्ययन से व्यक्ति अपना जीवन संवार सकता है। इस शोध सारांश में इतना ही दिङ्मात्र के लिए पर्याप्त है। विस्तृत शोध-पत्र में इसे विस्तार से प्रतिपादित किया जा सकेगा।

‘शिशुपालवधम्’ महाकाव्य में चित्रकाव्यमीमांसा

डॉ. शैलेन्द्र कुमार शर्मा
भरतपुर

संस्कृत वाङ्मय की अनेकानेक विधाओं में संस्कृत काव्यशास्त्र का विशिष्ट स्थान है। मूल रूप से लोकोत्तर वर्णनानिपुण कवि का कर्म काव्य है, तथा उसी काव्य के गूढ़ तत्वों को प्रतिपादित करने वाला अथवा काव्यसौन्दर्य की परख करने वाला ग्रन्थ काव्यशास्त्र है। काव्यशास्त्र में काव्यविभाजन का वर्गीकरण अत्यन्त वैज्ञानिक ढंग से किया गया है। व्यंग्याधारित काव्य-विभाजन के अन्तर्गत व्यंग्य की प्रधानता से युक्त काव्य उत्तम काव्य (ध्वनिकाव्य), व्यंग्य की अप्रधानता अथवा गौणभाव से युक्त काव्य मध्यमकाव्य (गुणीभूतव्यंग्य काव्य) तथा व्यंग्य के अभाव से युक्त काव्य अधमकाव्य (चित्रकाव्य) के रूप में स्वीकार किया गया। इनमें से शब्दवैचित्र्य एवं अर्थवैचित्र्य से गुम्फित चित्रकाव्य रसभावादि तात्पर्य से रहित, व्यंग्यार्थ विशेष के प्रकाशन की शक्ति से शून्य चित्र के समान आभासित होता है। चित्रकाव्य में कवि का ध्येय रसादि की विवक्षा करना न होकर आलंकारिक चमत्कार उत्पन्न करते हुये शब्दवैचित्र्य एवं अर्थवैचित्र्य का उपनिबन्धन करना होता है। संस्कृत साहित्य में बृहत्त्रयी एवं पंचमहाकाव्यों में विशिष्ट स्थान रखने वाला एवं वीररसप्रधान ‘शिशुपालवधम्’ महाकाव्य अलंकृतशैलीप्रधान तथा कलापक्षीय प्रकर्षता के समावेश से युक्त महाकाव्य है। कलापक्ष के मूर्धन्य एवं मर्मज्ञ विद्वान् महाकवि माघ ने अपनी नवीन उद्भावनाओं, अपूर्व कल्पनाओं एवं प्राकृतिक वर्णनों को अत्यन्त कृत्रिमता तथा अद्भुत कलावादिता के द्वारा अपने महाकाव्य में स्थान दिया है। महाकवि माघ के अद्भुत पाण्डित्यप्रदर्शन एवं अपूर्व बौद्धिक-विलास से सृजित कलात्मक उन्नति की द्योतक इन्हीं चित्रकाव्यपरक रचनाओं का संकलन कर उनका चित्रकाव्य के मुख्य भेदों एवं गौण भेदों के परिप्रेक्ष्य में चित्रात्मक विश्लेषण करना ही इस शोध प्रपत्र का प्रमुख प्रतिपाद्य रहेगा। आधुनिककाल में उपेक्षित चित्रकाव्यपरक रचनाओं के संवर्धन हेतु यह शोधप्रपत्र निश्चय ही उपादेय होगा।

भारतवर्ष आदिकाल से ही कला, शास्त्र, शिल्प आदि ज्ञान के अनेक माध्यमों के कारण विश्व-गुरु के रूप में प्रतिष्ठित रहा है। यह भी सत्य है कि कला शास्त्र-शिल्प आदि ज्ञान के अनेक माध्यमों की अभिव्यक्ति 'शब्द' द्वारा ही सम्भव है। यही 'शब्द'; पद, वाक्य, महावाक्य के रूप में परिणत होता है। यह समस्त योजना भाषा में नियमित होती है। जो भाषा जितनी अच्छा भावपूर्ण अर्थ सम्प्रेषण करये, वह उतनी ही समृद्ध मानी जाती है। इसी वैशिष्ट्य के कारण ही 'संस्कृत', मात्र भाषा ही नहीं अपितु देववाणी के रूप में प्रतिष्ठित है, जो अनेक युगों की संस्कृति तथा सभ्यता को धारण किए हुए विविध ग्रन्थ रूप में प्रतिबिम्बित है।

इसी 'पद' के माध्यम से काव्यशास्त्रीय तत्त्व-रस, छन्द, अलंकार, गुण, शीति, औचित्य आदि अनेक का संगीतशास्त्र के संदर्भ में प्रयोग होता है। पुनः कुछ तत्त्व प्रत्यक्ष संगीत में संदर्भित हैं तो कुछ अप्रत्यक्ष रूप में। इस प्रकार संगीतशास्त्र तथा काव्यशास्त्र का सम्बन्ध परिलक्षित होता है। एक विशिष्ट तथ्य यह भी है कि सामान्य पद अथवा वाक्य की अपेक्षा काव्यशास्त्रीय तत्त्वों से युक्त पद अथवा वाक्य विशिष्ट होते हैं, पुनः संगीतशास्त्रीय तत्त्वों से युक्त पद अथवा वाक्य में भावबोधन क्षमता अधिकाधिक होती है। अतः संगीतशास्त्रीय तत्त्वों से युक्त पद अथवा वाक्य अतिविशिष्ट होते हैं। प्रसिद्ध दार्शनिक, नितिज्ञ विद्वान् भर्तृहरि ने स्वयं कहा है कि—“साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात् पशु पुच्छ विषाणहीनः।”

अतः सिद्ध है कि संगीतशास्त्र में काव्य शास्त्रीय तत्त्वों की उपयोगिता विद्यमान है।

संगीतशास्त्र का आधार ग्रन्थ 'नारदीय-शिक्षा'

आनन्द कुमार विश्वकर्मा,
वाराणसी

नारदीय-शिक्षा संगीत का आधार ग्रन्थ है। यह सामवेद से सम्बद्ध शिक्षा ग्रन्थ है। सामवेद की शिक्षाओं में नारदीय शिक्षा का विशेष महत्त्व है। इसे उत्तम 'श्रव्य वेदांग' कहा गया है। जिस प्रकार से ऋग्वेद की शिक्षा के लिए पाणिनीय शिक्षा, यजुर्वेद की शिक्षा के लिये याज्ञवल्कीय शिक्षा, अथर्ववेद की शिक्षा के लिये माण्डूकीय शिक्षा रचना हुई, उसी प्रकार सामवेद की उत्तम शिक्षा के लिये नारदीय शिक्षा की रचना हुई। नारद को नारदीय शिक्षा का रचयिता माना जाता है। इस ग्रन्थ का रचनाकाल 8वीं शती ई०पू० से 5वीं

शती ई०पू० (800 ई०पू० से 500 ई०पू०) तक माना जाता है। नारदीय शिक्षा में दो प्रपाठक हैं और प्रत्येक प्रपाठक आठ-आठ कण्डिकाओं में विभक्त है।

नारदीय शिक्षा में संगीत की शिक्षा और वेदों का पाठन करने की उत्तम शिक्षा का विधान बताया गया है। संगीत की दृष्टि से यह ग्रन्थ महत्वपूर्ण है। इस ग्रन्थ में सामवेद की ऋचाओं के वर्णोच्चार एवं स्वरोच्चार के सम्बन्ध में उपदेश दिये गये हैं। मन्त्रों का पठन एवं गायन शुद्ध निर्दोष हो, इस उद्देश्य को पूरा करने के सारे उपाय इस ग्रन्थ में निहित हैं।

हरिवंश पुराण में सांगीतिक तत्त्वों का निरूपण

सारिका पाण्डेय,
वाराणसी

प्राचीन संस्कृत वांगमय के इतिहास में पुराण साहित्य का विशिष्ट स्थान है। पुराण शब्द का अर्थ प्राचीन से लिया जाता है। इसकी व्युत्पत्ति विभिन्न प्रकार से की गयी है। भानुजी दीक्षित ने अपने अमर कोश की टीका में इसकी व्युत्पत्ति तीन प्रकार से बतलायी है—

1) पूर्वकाल में होने वाले को 'पुराण' कहते हैं। 2) प्राचीन काल में भी नया ही रहने वाला पुराण है। 3) अतीत और अनागत को जो बताए वह पुराण है।

पुराणों की संख्या— महापुराणों की संख्या 18 और उपपुराणों की भी संख्या 18 मानी गयी है। देवी भागवत जी ने एक श्लोक में संक्षेप रूप से इन महापुराणों की संख्या को बताया है—

मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम्।

नालिपाग्निपुराणानि कू स्कं गरुडमेव च॥

पुराणों में विशेष रूप से सृष्टि, प्रलय, मनुकाल, राजा, ऋषि, देवता, दैत्य इत्यादि के वंश तथा विभिन्न वंशों के विशिष्ट व्यक्तियों के कीर्तियों आदि का विवरण दिया गया है। इनके अतिरिक्त अन्य विषयों पर भी चर्चा की गयी है जिनमें संगीत भी एक महत्वपूर्ण विषय के रूप में अपना स्थान रखता है। संगीत विषयक विवरण मुख्य रूप से हरिवंश पुराण, वायु पुराण, मार्कण्डेय पुराण तथा विष्णु धर्मोत्तर उपपुराण में प्राप्त होता है। प्रस्तुत शोध पत्र में महाभारत के खिल ग्रन्थ के रूप में विख्यात हरिवंश पुराण में प्राप्त संगीत विषयक तथ्यों पर प्रकाश डाला जाएगा।

इस पुराण का महाभारत के परिशिष्ट ग्रन्थ के रूप में महत्वपूर्ण स्थान है। इस पुराण के अनुसार उस काल में साम और गान्धर्व संगीत दोनों का प्रचूर मात्रा में प्रचार था। ग्रन्थ में नृत्य, गीत, वाद्य तीनों का उल्लेख मिलता है। उस काल में महती वीणा के 21 तारों पर तीनों सप्तकों की प्राप्ति, तीनों ग्राम तथा 21 मुर्च्छनाएँ भी प्रत्यक्ष की जा

सकती थीं। प्रस्तुत ग्रन्थ में नाट्य कला के विषय में भी पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। हल्लीसक तथा छालिक्य नामक नृत्य का विस्तृत विवरण हरिवंश पुराण में प्राप्त होता है।

मेघदूताश्रित उज्जयिनी विमर्श

डॉ० अभिमन्यु सिंह

लखनऊ

वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखो मा स्म भूरुज्जयिन्याः इत्यादि (पूर्वमेघ 27) श्लोक में महा कवि कालिदास का पात्र विरही यक्ष अलकापुरी का मार्ग बताते हुए मेघ से कहता है कि यद्यपि रामगिरि से अलकापुरी जाते समय तुम्हें मार्ग से हटकर वक्र होकर जाना पड़ेगा, तथापि भौतिक आकर्षण से परिपूर्ण उज्जयिनी नगरी को देखते हुए अपने लक्ष्य पर पहुँचने के साथ ही तुम्हें सहज आनन्द का भी लाभ होगा। अनन्तर अवन्ती देश की सुन्दर राजधानी उज्जयिनी के सुखद परिदृश्य का व्यापक परिचय दिया है। वहाँ की वास्तु रचना, नगरी में निवास करने वाले लोग तथा उद्यान और सुभूषित वाणिज्य क्षेत्र आदि का वर्णन करते हुए कवि ने वहाँ के मोहक वातावरण का पर्याप्त परिचय दिया है। इस सबसे ऊपर भगवान महाकाल के प्रति आदर प्रकट करते हुए मेघ को भी जीवन का फल पाने के लिए प्रेरित करते हैं—कुर्वन् सन्ध्यावलिपटहतां शूलिनः श्लाघनीयमामन्द्राणां फलमविकलं लप्स्यसे गर्जितानाम्। पूर्वमेघ 34

संसार के साहित्यिक वाद — एक संक्षिप्त परिचय

डॉ० सन्तोष कुमार पाण्डेय

का०हि०वि०, वाराणसी

संसार के विभिन्न देशों में साहित्यिक रूप, विषय छन्द, अलंकरण, सिद्धान्त तथा तत्त्व पर जितना विचार हुआ उन सबके अनुसार प्रत्येक देश में नये-नये वाद चल पड़े। जिन लोगों ने इन वादों पर विचार किया उन लोगों ने उनके विरुद्ध अपने नये वाद प्रारम्भ कर दिये जिनमें से कुछ तो दार्शनिक आधार पर थे और कुछ व्यवहारिक। बहुत से वादों का नामकरण तो उन वादों के प्रवर्तकों के आधार किया गया और कुछ वादों के दार्शनिक आधार पर। इस शोध-पत्र में जितने वादों का परिचय दिया जा रहा है वे सब विभिन्न देशों में, विभिन्न कालों में विभिन्न व्यक्तियों द्वारा प्रवर्तित किये गये हैं।

कुछ देशों में साहित्यिक आधार के अतिरिक्त दार्शनिक आधार पर भी साहित्यिक वाद चलाये गये, जैसे हिन्दी साहित्य में ही निर्गुणवाद, सगुणवाद, सूफीवाद आदि चले। इन सब साहित्यिक वादों का आधार शुद्ध दार्शनिक था। इसी प्रकार चीन और जापान का

बहुत सा साहित्य कनफूची, शिन्तो और और बौद्ध धर्म से सम्बद्ध रहा। ऐसे ही कुछ वादों का संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है।

1. स्वाभाविकतावाद (हेलिनिज्म)– प्राचीन यूनानी भाषा-शैली स्वाभाविकतावादी (हेलेनिरिटिक) कहलाती थी। आगे चलकर यूनानी भावना के युग, आचार, विचार, भाषा और संस्कृति को ही स्वाभाविकतावाद (हेलिनिज्म) कहने लगे।

ऐसे ही कुछ प्रमुख वादों का संक्षिप्त परिचय इस शोध-पत्र में देने का प्रयास किया गया है।

THE DEFINITION OF RASA SUTRA: ACCORDING TO BHARATA

Nila Tilakantha

Bharata in his famous Rasasutra on the subject has defined the process of consummation rather than the nature of rasa . For the earlier writers from Bharata to Bhamaha, Rasa was an aesthetic situation or an aesthetic fact. Later, under the influence of Advaita philosophy of the Saivite School, Abhinavagupta imparted a subjective character to the concept and defined rasa as an aesthetic experience or the experience of an aesthetic situation. Before Abhinavagupta, bhattacharya had also explained the nature of rasa in his own way: a state of composure (resting in one's own consciousness), which is pervaded by beatitude (Ananda) and light (Prakasa) and is similar to the realization (Asvada) of the supreme Brahman. Abhinavagupta has described this state of realization of rasa by the sahrdaya (the ideal reader) in detail. According to him, the Sahrdaya through complete imaginative identification with the situation enjoys his own emotion which has been evoked and developed to a climax and having been liberated from the limitation of time and space . This realization is of the nature of pure bliss, and lasting only during the time of realization and is different from the basic emotions. He observes in Abhinavabharati : "Aesthetic experience consists in the realization of one's own self which is essentially blissful. It differs both from the Psycho-Physical experience as also from the spiritual experience of the Yogins.

Many a later scholar reproduced Abhinavagupta's view on the subject with a difference in emphasis here and there, until Viswanath, (14th century) summed up the(aphoristically as follows.

Rasa is tasted by the select (qualified) persons in a form which is not different from its own experience .its emerges in a state of Sattva, when the conciseness is purged of its baser impulses, is indivisible and accompanied by self- luminous beatitude. It is a state of intelligence and his free from any other form of perfections or knowledge.

आधुनिक संस्कृतसाहित्य में भारतवर्ष की समसामयिकी राजनीति :
'नमो निर्वाचनम्' के सन्दर्भ में

डा०. ओम् प्रकाश मिश्र

राजनीति किसी भी राष्ट्र के अस्तित्व एवं विकास का आधारस्तम्भ होती है। संस्कृत के आधुनिक साहित्यकार समसामयिकी राजनीति के विषय में भी पर्याप्त जागरूक हैं। ये प्रबुद्ध विद्वान समसामयिकी राजनीति के सभी महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर विचार कर उनके प्रभावों का सूक्ष्मरूप से आकलन करते हुए दिशा निर्देश देने के अपने सामाजिक दायित्व का भी विधिवत् निर्वाह करते हैं। संस्कृत के वरिष्ठ साहित्यकार सनातन कवि महामहोपाध्याय रेवाप्रसाद द्विवेदी विगत पचास वर्षों से समसामयिक सन्दर्भों को कविताकामिनी के विलास का विषय बनाते रहे हैं— अपने महाकाव्यों, खण्डकाव्यों, नाटकों तथा कथाओं में। इन रचनाओं में से तीन भारतवर्ष की तात्कालिक राजनीति से साक्षात् सम्बन्धित हैं — (1) सप्तर्षिकाण्डेसम्— भारतवर्ष के सन् 1977 के लोकसभानिर्वाचन पर आश्रित दशाङ्कक समवकार।

(2) स्वातन्त्र्यसम्भवम्— भारतवर्ष के सन् 1857 के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम से लेकर सन् 2012 के अन्नाहजारे महोदय के भ्रष्टाचारविरोधी शान्तिपूर्ण सत्याग्रह पर्यन्त इतिवृत्त का प्रतिपादक 75 सर्गात्मक तथा 6064 पद्यात्मक विशाल ऐतिहासिक महाकाव्य।

(3) नमो निर्वाचनम्— भारतवर्ष के सन् 2014 के लोकसभानिर्वाचन से सम्बद्ध इतिवृत्त का जीवन्त चित्रण करने वाला ऐतिहासिक खण्डकाव्य। इस खण्डकाव्य में 522 पद्य हैं अतः इस काव्य को सनातन कवि ने 'मोदीविजयपंचशती' भी कहा है। इस काव्य की रचना 12.05.2014 से 29.06.2014 पर्यन्त 48 दिनों में हुई है। इस प्रकार विश्व में किसी भी भाषा के साहित्य में समसामयिकी राजनीति पर इतनी शीघ्रता से यदि कोई छन्दोबद्ध रचना की गयी है, तो निश्चय ही वह हमारी संस्कृतभाषा है। यह गौरव का विषय है कि इस काव्य का द्वितीय संस्करण भी निर्मित हो गया है, जिसमें अनेक महत्वपूर्ण राजनैतिक बिन्दुओं पर गम्भीरतापूर्ण विस्तृत चिन्तन प्रस्तुत किया गया है। इस ऐतिहासिक काव्य के आरम्भ में कविश्रेष्ठ निवर्तमान प्रधानमन्त्री डा० मनमोहनसिंह के उज्ज्वल व्यक्तित्व का उल्लेख करते हुए अहिंसात्मक सत्तापरिवर्तन की उदार भारतीय परम्पराकी प्रशंसा करते हैं— ऐतिह्यमेतत् परमोत्तमत्वं मनुष्यशिष्टत्वगुणस्य धत्ते। विनापि हिंसां कलहं च कोटिसंख्यो जनो यत् प्रभुमुज्जहार।। नमो निर्वाचनम्— 10 सनातनकवि निर्वाचन को मानते हैं प्रति पाँच वर्षों में हाने वाला महाभारत का युद्ध या वाराङ्गना का वरण (पद्य 287)। इस ऐतिहासिक खण्डकाव्य में प्रधानमन्त्री के निर्वाचन क्षेत्र काशी के प्रकर्ष का भी विस्तृत निरूपण है (पद्य 487-497)। इसमें निवर्तमान प्रधानमन्त्री का वैदुष्य, वर्तमान प्रधानमन्त्री के व्यक्तित्व का गौरव, राष्ट्रीय एकता, समग्र भारत का उत्कर्ष, सदाचार, विश्व का विकास, दरिद्रता

उन्मूलन, आन्तरिक अहं भाव प्रभृति राष्ट्रोन्नति के सूत्रों का सविस्तार निरूपण किया गया है। कविवर प्रमुख राजनैतिक दलों का स्वरूप, उनकी गतिविधियों, दलगत नेताओं के वक्तव्यों तथा भारतीय जनता पार्टी के वरिष्ठ नेताओं की उदारता आदि का निरूपण करते हुए सन् 2014 के सम्पूर्ण चुनावी घटनाक्रम को मानों मूर्तरूप प्रदान कर देते हैं। सत्तापरिवर्तन के इस अद्वितीय वृत्तान्त के लिये सनातन कवि का उद्घोष है—पूर्वमप्येवमन्ये सन्धिकालाः समागताः। मोदीसंक्रान्तिकालस्तु न भूतो न भविष्यति। नमोनिर्वाचनम्—397 प्रस्तुत शोधपत्र में भारतवर्ष की समसामयिकी राजनीति के उपस्थापक खण्डकाव्य 'नमो निर्वाचनम्' के वैशिष्ट्य को निरूपित किया जायेगा।

भारतीय सिनेमा के परिप्रेक्ष्य में अनुकरण सिद्धांत की समीक्षा

सतरुद्र प्रकाश
नई दिल्ली

अनुकरण की प्रवृत्ति प्राणि-मात्र को प्रकृति द्वारा प्रदत्त एक ऐसी दिव्य शक्ति है जिसके प्रभाव के कारण वे कुछ क्रियाएं तथा जीवनोपयोगी तत्त्वों को स्वतः आत्मसात् कर लेते हैं तथा उन्हें हर प्राणी को फिर से आरम्भ नहीं करना पड़ता। जीवन, आयु एवं मेधा में प्रौढ़ता आने के साथ वह इन सभी चीजों में स्वयं प्रशिक्षित होता हुआ उनसे आगे निकलकर सभ्यता एवं संस्कृति के पथ पर नये आयाम स्थापित करता चलता है। और इस प्रकार यह सृष्टि-प्रक्रिया निरन्तर नूतन, नवीन व नवोन्मेषशालिनी होती हुई रमणीय बनी रहती है।

मनुष्य ने इस प्रवृत्ति को एक सिद्धांत के रूप में स्थापित किया तथा प्राच्य एवं पाश्चात्य सभ्यताओं के विभिन्न कालों में उनके प्रतिनिधि आचार्यों व मनीषियों ने उसे विधिवत् स्थापित किया। आचार्य भरतमुनि को भारतीय नाट्यशास्त्र के प्रवर्तक के रूप में परम्परा स्वीकार करती है जिन्होंने 'अनुकरण' शब्द का प्रयोग करते हुए नाट्य को परिभाषित किया : "नानाभावोपसम्पन्नं नानावस्थान्तरात्मकम्। लोकवृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मया कृतम्" (नाट्यशास्त्र, 1.109)। परवर्ती विद्वानों ने इन्हीं पैमानों पर नाट्य की विधिवत् स्थापना एवं विवेचन किया।

इस प्रकार, अनुकरण सिद्धांत की व्यापक अवधारणा एवं उसकी सार्वकालिक प्रासंगिकता जहां एक ओर आधुनिक सिनेमा द्वारा आज भी अनुसरित है वहीं दूसरी ओर ये सिद्धांत व उनमें निहित असंख्य अवधारणाओं का आधुनिक पद्धति में प्रयोग भारतीय सिनेमा को विश्व पटल पर एक गौरवशाली स्थान पर खड़ा कर सकता है।

डॉ० सविता ओझा
इलाहाबाद

आचार्य भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र रूप पञ्चम वेद की रचना की तथा इस सन्दर्भ में कहा— धर्म्यमर्थ्यं यशस्यं च सोपदेशं ससंग्रहम्। भविष्यतश्च लोकस्य सर्वकर्मानुदर्शनम्।।(ना०शा०१/१५) अर्थात् यह नाट्य धर्म, अर्थ, यश तथा सदुपदेशों का संग्रह है जो लोक के समस्त कर्मों का दर्पण है। वर्तमान काल में सम्पूर्ण विश्व में भौतिकवाद के विश्वव्यापी विकास के बाद सांस्कृतिक मूल्यों की आवश्यकता अनुभूत की जा रही है। प्राचीन काल से ही भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति विश्व के आकर्षण का केन्द्र रहा है परन्तु सम्प्रति भारतीय लोक स्वयं सांस्कृतिक अपघटन का दंश झेल रहा है। सूक्ष्मतया विचार करें तो प्रेक्षणीयक सन्दर्भ के परिवर्तित होते प्रतिमान इसके मुख्य भूमिका में कहे जा सकते हैं। प्रेक्षणीयक परम्परा में दृश्य-श्रव्य सभी रूपक आते हैं। यहाँ विशिष्टतया चलचित्र तथा दूरदर्शन में प्रदर्शित धारावाहिकादि में हो रहे सांस्कृतिक अवमूल्यन पर विचार अपेक्षित होगा। क्योंकि ये माध्यम ही सामान्य लोक में जन-जन के चाक्षुष्य-प्रत्यक्ष हैं। अतः लोक के प्रति इनका दायित्व बढ़ जाता है। जिसका आविर्भाव समाज के ईर्ष्या, लोभ, क्रोध, ग्राम्यधर्मादि के प्रशमनार्थ तथा विश्रान्ति प्रदान करने हेतु हुआ हो किन्तु जब वही प्रेक्षा भ्रमित करती हुई ग्राम्यता, ईर्ष्या, लोभादि को लोक में सञ्चरित करे, तब परिणामतः अवसाद, उत्तेजना, मानसिक व्याधियाँ, भ्रष्टाचारादि की अधिकता स्वाभाविक होगी। ऐसे में इन विकृतियों के उपशमनार्थ तथा प्रेक्षणीयक सन्दर्भों में संतुलन व्याप्त रखने के लिये सम्प्रति नाट्यशास्त्र की प्रासङ्गिकता बढ़ जाती है। प्रस्तुत शोधपत्र में इन्हीं बिन्दुओं का पल्लवन होगा।

“शकुन्तला” : संस्कृत नाटक ‘अभिज्ञान शकुन्तलम्’ का बांग्ला गद्यानुवाद

डॉ० सोमा दत्ता,
वाराणसी

युगपुरुष ईश्वरचन्द्र विद्यासागर स्त्री-शिक्षा का प्रसार, विधवा-विवाह का आरम्भ एवं बहुविवाह-प्रथा का रोध का आगाज कराकर समाज संस्कार में अपना अमूल्य योगदान दिया। साथ ही बांग्ला गद्य भाषा का संस्कार कर उसे नयी दिशा प्रदान किया। इसलिए उन्हें बांग्ला गद्य भाषा का जनक कहा जाता है। बांग्ला गद्य भाषा के संस्कार के लिए उन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना भी किया। उनके रचनाओं का उद्देश्य केवल साहित्य सृष्टि ही नहीं था। बल्कि वे साहित्य-सृष्टि के माध्यम से जनमानस में नवचेतना जाग्रत करना चाहते थे। उनकी अधिकांश रचनायें अनुवादमूलक ही हैं। जो कि मौलिक

गुण विशिष्ट है। पर उनके कुछ उल्लेखनीय व महत्वपूर्ण मौलिक रचनायें भी हैं। जिसमें उनका "संस्कृत भाषा ओ संस्कृत शास्त्र विषयक प्रस्ताव" (1853) ही बांग्ला भाषा में रचित संस्कृत साहित्य के इतिहास का पहला ग्रंथ है। विद्यासागर थे संस्कृतज्ञ ब्राह्मण पंडित। वे पश्चिम बंगाल के संस्कृत कॉलेज के अध्यापक व बाद में अध्यक्ष भी रहे। अतः उनका संस्कृत साहित्य द्वारा प्रभावित होना स्वाभाविक है। उनका संस्कृत चिंता आधुनिक भाषाविज्ञान समन्वित था। संस्कृत साहित्य के आधार पर विद्यासागर ने गद्यसाहित्य के क्षेत्र में अनेक नयी दिशा-निर्देश दिया है। जिसे आत्मसात करते हुए उनके परवर्ती आचार्यों ने बांग्ला साहित्य के पथ को और प्रशस्त किया है। अनुवादकमूलक रचनाओं में विद्यासागर ने संस्कृत, अंग्रेजी व हिन्दी भाषा साहित्य के कुछ ग्रंथों का भावानुवाद किया है। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने अनुवाद के माध्यम से सृजनमूलक साहित्य-धारा को और अधिक जीवन्त व समृद्ध किया है। उनके अनूदित ग्रंथों में 'शकुन्तला' (1854) विशेष रूप से उल्लेखनीय है। विद्यासागर के 'शकुन्तला' संस्कृत साहित्य के पूरोधा कालिदास के 'अभिज्ञान शकुन्तलम्' नाटक का बांग्ला गद्यानुवाद ग्रंथ है। जो बांग्ला गद्यसाहित्य के इतिहास में असाधारण रचना के रूप में ग्रहणीय है। इस ग्रंथ में उनके परिस्कृत बांग्ला गद्यशैली का परिचय मिलता है। विद्यासागर ने कालिदास के 'अभिज्ञान शकुन्तलम्' को अवश्य ही अनुकरण किया है, पर उनके 'शकुन्तला' में उनके स्वयं के रुचिबोध व साहित्यबोध के संमिश्रण से एक अनुकरणीय व अभूतपूर्व गद्य रचना की सृष्टि हुई है। जो कि एक मौलिक रचना के ही समान है। वास्तव में विद्यासागर का 'शकुन्तला' कालिदास के 'अभिज्ञान शकुन्तलम्' का उत्कृष्ट गद्य रूपान्तर ग्रन्थ है। जिसमें उन्होंने कालिदास के वक्तव्य विषय को अपरिवर्तित रखते हुए बंगाल के परिवेश व परिस्थिति का समावेश किया है तो कुछ अलौकिक घटनाओं का वर्जन भी किया है। क्योंकि वे अलौकिकता के पक्षपाती नहीं थे। उस युग के संस्कृतज्ञ पंडित होते हुए भी उनका दृष्टिकोण आधुनिक चेतना से ओत प्रोत था। 'शकुन्तला' की भाषा में कहीं तत्सम शब्दों की बहुलता है तो कहीं समसामयिक प्रचलित मौखिक रीति का प्रयोग किया गया है। विद्यासागर के शकुन्तला कालिदास के 'अभिज्ञान शकुन्तलम्' का बांग्ला भाषा में भावानुवाद है। जिसकी भाषा सर्वजन ग्रहणयोग्य है। इसमें साधु व मौखिक रीति का भी सफल प्रयोग परिलक्षित होती है। साथ ही इसमें लघु संलाप रचना में भी विद्यासागर के निपुणता का परिचय मिलता है। वास्तव में 'शकुन्तला' ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का एक उत्कृष्ट स्वच्छन्द अनूदित गद्यग्रंथ है, और कालिदास के संस्कृत 'अभिज्ञान शकुन्तलम्' के बांग्ला गद्य में अनुवाद करने का उद्देश्य था— संस्कृत भाषा के अनभिज्ञ बंगभाषी साधारण लोगों को संस्कृत साहित्य के श्रेष्ठ कवि व नाटककार व उनके उत्कृष्ट कृतियों से परिचित कराना। यही नहीं 'शकुन्तला' के माध्यम से ही वे पाठक समाज में यथार्थ गद्यशिल्पी के रूप में ख्याति प्राप्त किये।

of the old native languages were only spoken ones. People in some remote parts of world still use these to pass information from one generation to the next. The spoken or oral languages are more spontaneous and are up from a limited set of vowels and consonants, and often tone. They are simpler in structure and form as compared to written languages. A written language incorporates written symbols in addition to the corresponding sounds in a spoken language. If one listens closely, one will observe that a spoken language is much simpler and consists of broken sentences, as compared to its written form. Written languages also help to visualize, sustain, and communicate abstract thoughts coherently and, therefore, are more complex than spoken only languages.

Basic language being a conglomeration of symbols, sounds, tones and gestures is not what it represents or communicates. Hence, there is always room for misunderstanding unless one is able to convey and interpret not only the simple words that are spoken, but also the hidden tones and gestures. It is conceivable that for a few rare and inspired geniuses, mathematics can reach the point of becoming music or music becoming mathematics. The extraordinary thing about Sanskrit is it offers direct accessibility for anyone to that elevated plane where the two-mathematics and music, brain and heart, analytical and intuitive, scientific and spiritual-become one.

Sanskrit: Sacred Language

**Sakshi Srivastava
BHU**

Sanskrit is one of the most ancient languages belonging to a group dubbed Indo-European languages. Sanskrit is no longer a spoken language in India, the country of its origin, even though it is the ancestor of the many languages now spoken around the country such as Hindi and Bengali.

Even though Sanskrit is no longer a spoken language in India, it has characteristics of being a language that may be worth reviving.

In 1786, William Jones, a British jurist and Orientalist, during his address to the Bengal Asiatic Society, recognized Sanskrit for its wonderful structure-more perfect than Greek, more copious than Latin, and more exquisitely refined than either.

The primary characteristics of a sacred language is that the purpose for which it is used is to discover one's own true nature.

Sanskrit is so highly-developed and refined as a tool for serving this purpose that even the task of learning the language seems difficult-unless the motive for learning is aligned with the function of the language, that is to know oneself. When Sanskrit is approached with humility and one-pointedness that is the trademark of a genuine search for truth, it is revealed, there arises a simple joy in all aspects of its study.

India's growing economic status has actually made it poor; we need to look at Gross National Happiness, instead of Gross National product. Today, there is a greater gap between stolen elsewhere-ist native languages.

संगीत में अलंकार शब्द का प्रयोग सजावट अथवा सौन्दर्य के लिए किया जाता है। 'अलंकार' शब्द स्वयमेव व्यापक अर्थ रखता है। इस अकेले शब्द में ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की सुन्दरता समा सकती है। अलंकार शब्द सारगर्भित एवं सार्थक शब्द है। अलंकार संस्कृत भाषा का शब्द है जिसकी उत्पत्ति 'अलम् + कृ + घञ्' शब्द से हुई है। जिसका अर्थ सजाना या अलङ्कृत करने की क्रिया है। प्राचीनकाल से लेकर आज तक अलंकारों को संगीत के क्षेत्र में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है। इनकी महत्ता को देखते हुए प्राचीन एवं मध्यकालीन प्रमुख शास्त्रकारों ने इसकी चर्चा की है।

भरतमुनि ने अनेक स्थलों पर अलंकारों का वर्णन किया है जैसे आभूषण के अलंकार संगीत के अलंकार, पद्य के अलंकार, काव्य के अलंकार, वीणा के अलंकार, इन सभी क्षेत्रों में अलङ्कृत करने वाली वस्तु को अलंकार कहा गया है। भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र के 16वें अध्याय में काव्य के अलंकारों का वर्णन किया है तथा नाट्य में प्रयोग करने के लिए चार प्रकार के अलंकारों का वर्णन किया— उपमा, रूपक, दीपक तथा यमक। संगीत कला में जो बंदिश है उसमें भी इन चारों अलंकारों का प्रयोग होता है। संगीतकार बंदिश की रचना कर अपने भावों को व्यक्त करता है तथा बंदिश जितनी खूबसूरत और अलंकारिक होगी, उतनी ही भावाभिव्यक्ति और रसानुभूति श्रोताओं को होगी।

संगीत आध्यात्मिक पक्ष

डॉ० संगीता सिंह
वाराणसी

भारतीय विचारधारा सदा से आदर्शवादी रही है। इस विचारधारा में मानव जीवन का लक्ष्य परमात्मा का साक्षात्कार माना गया है, इस लक्ष्य की प्राप्ति का सर्वोत्तम माध्यम संगीत है क्योंकि संगीत का जन्म "ओउम्" से हुआ है, जिसका उच्चारण करने पर 'अ', 'उ', 'म' तीन अक्षरों का संयोग होता है। ओउम् ही ईश्वर का रूप है जिसमें क्रमशः ब्रह्म, विष्णु तथा महेश का स्वरूप है। ओउम् में ही शब्द तथा स्वर दोनों हैं। भारतीय उपसाकों का लक्ष्य परमात्मा से सम्बन्ध स्थापित करना रहा है। इसलिए भारतीय संस्कृति का सुदृढ़ आधार उसी आध्यात्मिकता है। भारतीय संस्कृति आध्यात्मिक परिप्रेक्ष्य में ही पल्लवित एवं पोषित हुयी। विद्वानों एवं दार्शनिकों ने आध्यात्म शब्द को आत्मा से सम्बन्धित माना है। आध्यात्म में 'अर्थ' और 'आत्मा' दो शब्द हैं। अभी का अर्थ विषयक या सम्बन्धी है, इसलिए आध्यात्म का अर्थ आत्मा—विषयक हुआ। अतः आध्यात्म विद्या है। चूंकि सभी

कलाओं में आध्यात्म पक्ष की प्रधानता होती है। संगीत कला का चर्म आदर्श मोक्ष प्राप्ति आत्मा का परमात्मा से मिलन तथा परम शान्ति को प्रदान करना माना गया है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को प्राप्त करने का यही एक साधन है जो हमारे जीवन में निहित इस आध्यात्मिक महत्ता के कारण ही भारतीय संस्कृति में पनपने वाली प्रत्येक कला का उच्चतम ध्येय आध्यात्मिक आनन्द प्रदान करना रहा है।

परम्परागत भक्ति संगीत

अल्पना
वाराणसी

मानवीय इन्द्रियों से हम जो कुछ अनुभव करते हैं, उसका प्रभाव हमारे मन पर पड़ता रहता है। अनुभव श्रणिक होता है, परन्तु उसका प्रभाव या संस्कार हमारे मन पर सर्वदा के लिए अंकित हो जाता है। रति, हास्य, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, घृणा, विस्मय, विरक्ति व भक्ति ऐसे ही संस्कार हैं, जो मानव के मानस पटल पर अनुभव परम्परा के प्रभाव रूप में अंकित हैं। भारतीय दार्शनिकों का मत है यह संस्कार जन्म-जन्मांतर तक मानव के साथ रहते हैं और जीव के मन में बस जाते हैं। इसलिए इन संस्कारों या भावों को स्थायी भाव कहा जाता है। यही स्थायी भाव भक्ति संगीत के प्रथम सीढ़ी है। भावना जगत के भावुक प्राणियों की इन एकान्त आत्म निवेदन की रकात्मक अनुभूतिपूर्ण गति विधि को भक्ति के नाम से पुकारा जाता है। प्रेम की जैसे नीति मादक भावनाओं के उद्भव से प्रेरित होकर दो हृदयों के एकीकरण को भक्ति कह सकते हैं। भक्ति की धारणा में अनवरत् साधना के अनंतर उन्मत्त प्रेम ही एक-एक सौपान पर चढ़ता हुआ परिपक्व अवस्था को प्राप्त करना ही एक मात्र उद्देश्य होता है। चूंकि भक्ति संगीत के बिना मानवीय जीवन (क्योंकि मानव एक सामाजिक प्राणी है) जिसके अन्तर्निहित धार्मिक रीति-रिवाजों के द्वारा ही सम्पन्न होते हैं। भक्ति संगीत का प्रथम चरण मानव का जन्म है तथा उसका अन्तिम चरण मानव की मृत्यु माना जाता है।

नाट्यशास्त्र में उल्लिखित सांगीतिक तत्व

अनामिका प्रकाश
वाराणसी

नाट्यशास्त्र संगीत का आधार ग्रंथ माना जाता है। यही एक ऐसा ग्रंथ है, जिसमें सर्वप्रथम संगीत के आधारभूत तत्वों पर प्रकाश डाला गया है। इसमें सर्वप्रथम नाट्य के साथ-साथ संगीत के पृथक रूप की चर्चा की गयी है। इसे संगीत के आदि ग्रंथ के रूप में माना गया है, जिस पर आगे चलकर अनेक शोध एवं नवीन-ग्रंथ की रचना हुई। इसमें संगीत को नाट्य का एक अंग समझकर इसकी विवेचना की गयी है। इसमें कुल छत्तीस

अध्याय है, इनमें से छः अध्याय (28 से 33 तक) पूर्णरूप से संगीत से संबंधित हैं। इनमें वर्णित विषयों की विविधता को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि छः अध्यायों का परिमाण बिल्कुल न्यून नहीं है। इसे देखकर पता चलता है कि आज भी संगीत का कोई ऐसा तत्व नहीं है, जिसके विषय में भरत का अधिकारपूर्ण मंतव्य न प्राप्त हो सके। इसमें वर्णित रस, भाव व काकु संबंधी जितने अंश हैं, उनका संगीत से संबंध विच्छिन्न नहीं है, बल्कि इनको यथोचित रूप से संगीत साधना में स्थान देने से ही संगीत का भाव-पक्ष पुष्ट हो सकता है, जिससे संगीत का वास्तविक उद्देश्य पूर्ण ही सकता है। इस प्रकार यह एक ओर संगीत के शास्त्र का पूर्ण सार-संग्रह है, तो दूसरी ओर संगीत के भावपक्ष का वैज्ञानिक विश्लेषण भी प्रस्तुत करता है।

मतंग कृत बृहद्देशी ग्रन्थ : एक परिचय

उत्कर्ष गुप्ता
वाराणसी

किसी भी कला एवं संस्कृति को विकसित रूप प्रदान करने के लिए ग्रंथ की रचना की आवश्यकता होती है। ग्रंथों के द्वारा ही तत्कालीन सभी आवश्यक बातों को सुरक्षित रखा जा सकता है, जिससे भावी पीढ़ी लाभान्वित हो सके। भारतीय शास्त्रकारों ने संगीत के शास्त्रीय पक्ष का अध्ययन कर अमूल्य कृतियां संगीत जगत् को दी हैं इन्हीं में से एक ग्रंथ मतंग कृत 'बृहद्देशी' है। नाट्य से पृथक् करके संगीत का प्रतिपादन करने वाला यह सर्वप्रथम ग्रंथ है।

देशी प्रबंधों सम्बन्धी निरूपण करने वाला यह सर्वप्रथम ग्रंथ है। इसके नाम से ही स्पष्ट होता है कि इस ग्रंथ में 'बृहद्' रूप से देशी रागों की व्याख्या की गई है। 'देशी' शब्द इस ग्रंथ में कई अर्थों में प्रयुक्त हुआ है (1) ध्वनि को देशी कहते हैं इसलिए इसका अर्थ व्यापक है, (2) भाषा को भी देशी कहा है (3) तीसरे स्तर पर संगीत को मतंग ने देशी कहा है तथा चौथे स्तर पर संगीत के दो भाग 'मार्ग' और 'देशी' में से एक भाग को 'देशी' कहा है। नाट्यशास्त्र के बाद तथा संगीत रत्नाकर के पूर्व की संगीत परम्परा के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए 'बृहद्देशी' को एक महत्वपूर्ण ग्रंथ माना जाता है।

संगीत रत्नाकर

संगीता शुक्ला
वाराणसी

संस्कृत में लिखे गये संगीत शास्त्र के सबसे बृहद् ग्रंथों में यह ग्रंथ संगीत रत्नाकर है। यह एक मात्र ऐसा ग्रंथ है। जिसका पाठ, शुद्ध, अविकल तथा अखण्डित रूप में मिलता है। संगीत के अत्यन्त विशाल व व्यापक क्षेत्र में सूक्ष्म व व्यवस्थित निरूपण

तथा प्रमाणिकता की दृष्टि से संगीत के शास्त्र ग्रंथों में शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर का अप्रतिम स्थान है। इस ग्रन्थ की विषय वस्तु में संगीत के तीनों अंगों गीत, वाद्य तथा नृत्य का समावेश किया गया है। वास्तव में देखा जाय तो संगीत शास्त्र का ऐसा स्पष्ट, व्यवस्थित, पूर्ण और प्रमाणिक रूप अन्य किसी ग्रंथ में उपलब्ध नहीं है।

संगीत रत्नाकर ही अब तक का एक मात्र पहला ऐसा ग्रंथ है जिसमें गीत वाद्य व नृत्य तीनों विधाओं का समावेश किया गया है। इसके पहले के नारद, कोहल, दत्तिल, मत्तंग, भरत आदि के ग्रन्थों में इन तीनों का समावेश नहीं प्राप्त होता है। रत्नाकर के बाद के सभी ग्रन्थकारों ने इसका अनुकरण किया है। इस ग्रंथ में कुल 7941 श्लोक हैं। इस ग्रंथ की विषय वस्तु की कुछ मौलिक विशेषताएं हैं। लक्षणग्रंथ होते हुए भी संगीत रत्नाकर में भाषा सौन्दर्य, अलंकार योजना आदि का सौन्दर्य, ग्रंथ में कई स्थानों पर मिलता है, लेकिन खास तौर पर ग्रंथ के शुरु में वंश परम्परा और आत्म परिचय संबंधी श्लोक और ग्रंथ के उपसंहार के श्लोक काव्य जैसा आनन्द देने वाले हैं और ग्रंथकार की काव्य प्रतिभा के परिचायक हैं।

सौन्दर्यशास्त्र

कृष्णा बाला सिंह
वाराणसी

सौन्दर्यशास्त्र संवेदनात्मक भावात्मक गुण धर्म और मूल्यों का अध्ययन है। कला संस्कृति और प्रकृति का प्रतिआंकन ही सौन्दर्यशास्त्र है। सौन्दर्यशास्त्र वह शास्त्र है जिसमें कलात्मक कृतियों, रचनाओं आदि से अभिव्यक्त होने वाला अथवा निहित रहने वाले सौन्दर्य का तात्त्विक दार्शनिक और मार्मिक विवेचन होता है। विशेष किसी सुन्दर वस्तु को देखकर हमारे मन में जो आनन्द दायिनी अनुभूति होती है उसके स्वभाव और स्वरूप का विवेचन तथा जीवन की अन्यान्य अनुभूतियों के साथ उसका समन्यवय स्थापित करना इसका मुख्य उद्देश्य होता है।

भारतीय सौन्दर्य की नींव आध्यात्मिक रही है। कला सौन्दर्य साधना का लक्ष्य ब्रह्मानन्द की उपलब्धि माना गया है, सच्चिदानन्द के तीन गुण सत्यम्, शिवम् एवं सुन्दरम् है। इसमें सुन्दरम् का स्थान सबसे आगे है वस्तुतः सुन्दरम् में सत्यं एवं शिवम् का संगम है, सुन्दरम् का अस्तित्व ही सत्य है, सुन्दर में जो प्रेम तत्व है वही शिव है।

धर्म एवं संगीत

अर्चना यादव
वाराणसी

प्रायः सभी धर्मों का सम्बन्ध मनुष्य के मन से हैं। धर्म कोई भौतिक वस्तु नहीं है—यह तो एक अमूर्त धारणा है जो मन एवं आत्मा को उन्नत करती हैं अध्यात्म भी आत्मिक उत्थान का शास्त्र है। आध्यात्मिक अध्ययन का अर्थ आत्मा की उन्नति ही है।

धार्मिक आचरण से भी आत्मा की उन्नति होती है। अतः धर्म एवं अध्यात्म परस्पर अन्तःसम्बन्धित है। जिस प्रकार धर्म में चित्त की एकाग्रता के लिए संगीत का आश्रय लिया जाता है उसी प्रकार आध्यात्मिक उत्थान के लिए भी संगीत एक स्वाभाविक सोपान का कार्य करता है।

भारतीय संगीत में मोक्ष की प्राप्ति कर लेना भी ईश्वर की भक्ति का ही एक साधन माना जाता रहा है। आदिकाल से ही संगीत का धर्म से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। संगीत की कला का रसपूर्ण उन्मेष मन्दिरों के प्रांगण में होता रहा है। कहीं भी पूजा-अर्चना हो, या मंत्र, प्रभु की स्तुति पाठ हो या आरती सब सांगीतिक रूप में हुआ करती थी। देवदासियां मन्दिरों में ईश्वर के आगे नृत्य किया करती थी। आगे चलकर संगीत की एक शाखा भक्ति के रूप में बनी रही जो आज तक यथावत मिलती है। अनेक ध्रुपद हमारे यहाँ के सुप्रसिद्ध देवी देवताओं (शिव, सरस्वती, गणेश आदि) के नाम से रचे गये हैं। इसी प्रकार ख्याल भी श्रीराम, श्रीकृष्ण और श्री गणेश इत्यादि के नाम पर रचे गये मिलते हैं। संगीत में राग ध्यान और राग चित्र देवी-देवताओं पर रचे गये हैं। संगीत वाद्यों और अंगों या आयामों के नाम भी यथा-वीणा, तालों में ब्रह्म ताल, रुद्र ताल आदि देवी-देवताओं के नाम पर ही रख गए। इससे पूर्ण रस से यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि भारत की धरा पर संगीत की कला कभी भी धर्म से अलग-थलग होकर न तो रही है और न ही उसका अच्छी तरह से विकास हो सका है। संगीत में किसी विशेष धर्म या जाति का महत्व नहीं रहा है। संगीत कला में हर धर्म और जाति को समुचित समादर और स्थान दिया है। यही कारण है कि गुरुद्वारे में गुरुवाणी, मस्जिद में कव्वाली, मन्दिर में आरती तथा चर्च में प्रार्थना रूप में संगीत प्रत्येक स्थान पर शोभायमान रहा है।

Music in the Tradition of Sanskrit Theatre

Miss. Anuradha Raturi
Varanasi

Music and the theatre are natural partners and close associates in many world cultures. It is clear that the theatre music was only one milieu among many within which music flourished, and that music was not assigned the privileged position it held in the world of Indian theatre. In addition to this natural partnership between music, dance and the stage, there are a number of reasons why the Sanskrit theatre exerted a special influence upon musical thought and practice. First and of overriding importance, the body of dramatic theory and criticism provides more detailed information on the musical system and its application in performance than is available for any other ancient culture. Second, the demand for incidental music, much of which had to be produced spontaneously and third, because many components of dramatic theory have developed into independent models for musical structure, it is possible to identify the performing arts. Fourth the special relationship that has always existed between Indian music and dance may be traced to their ritual pairing in the preliminary dramatic ceremonies (Pūrvaraṅga). And fifth, the standard

repertoire of emotional states and expressive styles set the emotional tone for the expressive range of later Indian music and laid the foundation for the entire system of musical values

भारतीय संगीत शास्त्र का क्रमिक विकास

आहना शर्मा
वाराणसी

भारतीय शास्त्रीय संगीत को समझने के पूर्व संगीत के विकास पर दृष्टि देना आवश्यक है। भारतीय विचार धारा वैदिक काल से आध्यात्मिक विचार धारा है। प्राचीन भारत में किसी भी कला के विकास का आधार आध्यात्मिक है। संगीत के जितने भी समालोचक हुए हैं उन्होंने यह माना है कि भारतीय संगीत शास्त्र की सिद्धान्त परम्परा सदियों विकास के परिणाम स्वरूप भरत को प्राप्त हुई, यही इतनी प्राचीन है। शास्त्र के रूप में सामग्री सबसे पहले भरत के नाट्यशास्त्र में उपलब्ध है। लेकिन यह केवल संगीत का शास्त्र-ग्रन्थ न होकर नाट्य ग्रन्थ है। शास्त्रीय संगीत का स्वतन्त्र रूप मतंग के बृहद्देशी में ही मिलता है। शारंगदेव के काल तक नाट्य से स्वतन्त्र संगीत का प्रयोग होने लगा था। इसके तीन अंग— गीत, वाद्य और नृत्य महाराणा कुंभा द्वारा रचित 'संगीत राज' सोलह हजार श्लोकों में लिखा गया ('संगीत-रत्नाकर' से लगभग तीन गुना), ऐसा शास्त्रग्रन्थ है, जिसमें संगीत के विषयों का इतना विस्तृत निरूपण हुआ है, जितना अन्य किसी ग्रन्थ में नहीं। 'संगीत' मानव-जीवन की विभिन्न परिस्थितियों, मानव-व्यवहार और सुख-दुखादि की अभिव्यक्ता करने का सबल माध्यम रहा और अंतिम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति करने का प्रबल साधन माना गया। संगीत-शास्त्र का निरूपण इसी रूप में हुआ। इस प्रकार आज की भाषा में न सही, लेकिन किसी-न-किसी रूप में मनोविज्ञान, समाज-शास्त्र, मानव-शास्त्र से संबद्ध जरूर रहा। दर्शन से तो इसका सीधा संबंध ही था, क्योंकि मनुष्य-देह में वास करने वाली आत्मा का परमात्मा से सीधा संबंध स्थापित कराना तो हमारे यहाँ के सभी शास्त्रों, कलाओं, ज्ञानों का मूल उद्देश्य रहा है।

संगीत शास्त्र का आदि ग्रन्थ : नाट्यशास्त्र :

पूनम वर्मा
वाराणसी

संगीत जिसे गायन, वादन तथा नृत्य का समुच्च कहा जाता है। संगीत की दो धाराएं हैं एक है क्रियात्मक पक्ष जो कि शास्त्रीय नियमों के अनुसार गायन, वादन तथा नृत्य को प्रस्तुत करता है तथा शास्त्र पक्ष उस कला को सदैव संरक्षित रखने का काम करता है। भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र ग्रन्थ की रचना हमारे चारों वेदों के आधार पर की है, इसलिए इसे नाट्यवेद भी कहा गया। संगीत का भी आदि ग्रन्थ होने के कारण

इस ग्रन्थ को संगीतशास्त्र में इसे प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त है। इसकी प्रमुखता को देखते हुए विद्वानों ने इसे पंचम वेद की संज्ञा भी दी है। वैदिक युग में जीवन में श्रेष्ठ कला, विद्या और रंजकता के महत्त्व को रेखांकित करने के लिए तथा कलाओं के माध्यम से जीवन में प्रेय के साथ श्रेय के स्थायी वरण के लिए नाट्यशास्त्र जैसे कला के उत्कृष्ट ग्रन्थ की रचना हुई। नाट्य वेद के ही अनुसार ब्रह्मा ने भरतमुनि से इसकी रचना कराई। भरत ने चारों वेदों से उनके सार तत्वों के लेते हुए नाट्यशास्त्र की रचना की और ऋषियों तथा ग्रन्थकार ने ऋग्वेद से पाठ, यजुर्वेद से अभिनय, सामवेद से गान और अथर्ववेद से रस तत्व को लेते हुए इसे ऐसा व्यावहारिक शास्त्रीय रूप प्रदान किया कि आज हम नाट्य शास्त्र को संगीतशास्त्र और नृत्य शास्त्र भी कहते हैं। वास्तव में देखा जाए तो नाट्यशास्त्र संगीत का शास्त्र नहीं बल्कि नाट्य का शास्त्र है। इस ग्रन्थ का प्रसंग नाटक के परिप्रेक्ष्य में है, इसमें संगीत का प्रसंग उतना ही है, जितना नाटक में संगीत की भूमिका होती है, अर्थात् नाट्यसंगीत सा है यहां गीत प्रसंग। नाट्यशास्त्र की रचना हो जाने के बाद भरत काल के प्राश्निकों अर्थात् समीक्षकों ने इसे ग्रन्थ को तौरिक ग्रन्थ कहा, अर्थात् इस ग्रन्थ में नाट्य के साथ गायन, वादन, नृत्य तीनों हैं। नाट्य में तीनों समाहित हैं। इन्हें अलग करके नहीं देखा जा सकता। अलग करने से नाटक संपूर्ण कला के रूप में नहीं रह जायेगा, न ही नाट्य कला में इन तीनों को अलग से जोड़े जाने की व्यवस्था और जरूरत है। नाट्यशास्त्र में संगीत सम्बन्धी अध्यायों का विषय विस्तार इस प्रकार किया गया है। 28वें और 29वें अध्याय में आतोद्य विधि व ततातोद्य विधान में तत वाद्यों की प्रयोग विधि सहित शारिर तथा दारवी वीणा का स्वरगत विषय संग्रह पूरा किया है। जिसमें स्वर श्रुति, ग्राम, ब्रह्मर्चना, साधारण जाति, वर्ण, अलंकार, धातु, वृत्ति आदि विषयों का समावेश है। 30वें अध्याय में सुषिर वाद्यों का वर्णन 31वें में ताल विधि 32वें में पदगत विधि अर्थात् ध्रुवा और उनके भेद 33वें में अवनद्ध वाद्यों की वादन विधि। इस प्रकार छठा भाग केवल संगीत सम्बन्धी विषयों को ही उजागर करता है। अतः हम कह सकते हैं कि संगीत शास्त्र को समृद्ध करने में नाट्यशास्त्र की विशेष भूमिका है।

विज्ञापन में संगीत

रागिनी सिंह
वाराणसी

सूचना, मनोरंजन और प्रचार के माध्यमों में, विज्ञापन का प्रयोग एक अरसे से व्यावहारिक प्रक्रिया है। विज्ञापनों को प्रचार की आवश्यकता होती है या कहना चाहिए कि विज्ञापन का दूसरा नाम प्रचार है। किसी वस्तु को विज्ञापित करने का अर्थ ही है। उस वस्तु को विज्ञापित करने का अर्थ ही है उस वस्तु का प्रचार। इस प्रचार को अधिक से अधिक जनसामान्य में पहुंचाने के लिए उत्पादकों या विज्ञापनदाताओं को सम्प्रेषण की विभिन्न प्रणालियों का उपयोग करना पड़ता है। इनमें प्रमुख है सम्प्रेषण और संचार माध्यम,

सम्प्रेषण के अनेक माध्यम हैं। जिनमें संचार माध्यम भी हैं जैसे पत्र पत्रिका, रेडियो, दूरदर्शन उपग्रह चैनल और फिल्म। विज्ञापन सीधे तौर पर भी दिये जाते हैं।

इस उदाहरण से यह स्पष्ट होता है कि विज्ञापन में अर्थात् किसी वस्तु के प्रचार में संगीत बड़ी अहमियत रखता है। सीधे-सीधे कोई व्यक्ति वस्तु के प्रचार में रुची नहीं लेता, लेकिन वह संगीत में रुचि लेता है। इसलिए विज्ञापन में संगीत का प्रयोग अनिवार्य रूप से होने लगा है। इससे लाभ यह होता है कि संगीत को स्वीकार करते हुए व्यक्ति या उपभोक्ता उस वस्तु को भी स्वीकार करने लगता है। उसके मनोविज्ञान में संगीत घुलता है और संगीत के साथ उस Product का नाम और उसकी क्वालिटी भी। यानी उपभोक्ता के मन-मस्तिष्क तक पहुँचने का सुगम जरिया बन जाता है संगीत। संगीत छः प्रकार से विज्ञापन में अपनी भूमिका तय करता है।

मध्य प्रदेश के जनजातीय वर्ग की संगीत शास्त्रीय पृष्ठभूमि

आकांक्षा तिवारी
वाराणसी

लोक से ही शास्त्रीयता का प्रस्फुटन हुआ है, अतः सांगीतिक शास्त्रीयता लोक संगीत का ही परिमार्जित रूप है। वह मानव समूह जो अपनी निश्चित भौगोलिक व सामाजिक विरासतों पर केंद्रित हो अपनी क्षेत्रीय विशिष्टताओं का प्रतिनिधित्व करता है, जनजातीय वर्ग कहलाता है, और इस वर्ग द्वारा भावाभिव्यक्ति हेतु गाए बजाए जाने वाले संगीत को जनजातीय संगीत कहते हैं। ये जनजातियाँ अपनी क्षेत्रगत परंपराओं व सामाजिक संरचना के आधार पर कार्यक्रमों व उत्सवों को संपादित करती हैं, इनके प्रत्येक संस्कार में संगीत रचा बसा होता है। जनजातीय वर्गों की अपनी एक विशिष्ट संस्कृति है, और ये वर्ग भौतिकता की बयार से आज भी बहुत दूर हैं, यही कारण है कि इनकी संस्कृति व परंपराएं उसी पुराने रूप में आज भी बनी हुई हैं, जिसका प्रभाव इनके संगीत में भी परिलक्षित होता है जो आज भी उसी अविकसित अवस्था में है। जनजातीय संगीत की कोई शास्त्रीय पृष्ठभूमि नहीं होती अतः इनकी सांगीतिक कृतियों में शास्त्रीयता का कोई पुट नहीं मिलता, ये जनजातियाँ प्रदत्त प्राकृतिक अनुभवों, स्वबुद्धिमत्ता एवं अभिरुचि के आधार पर अपनी सांगीतिक परिकल्पनाओं को अभिव्यक्त करती हैं अतः इनकी प्रायोगिक बंदिशें शास्त्र मुक्त होती हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार जनजातीय संगीत शास्त्रीय संगीत का ही अपभ्रंशात्मक रूप है।

मध्यप्रदेश में विभिन्न जनजातीय वर्ग जैसे— कोल, भील, बैगा, कोरकू, गोंड इत्यादि निवास करते हैं। जिनकी प्रथक-प्रथक संगीत शैलियाँ हैं, इनके द्वारा कर्मा, बिरहा, होरी, भगत आदि गीत प्रकारों का गायन किया जाता है, व प्रयुक्त वाद्यों में मादल, नगड़िया, मंजीरा प्रमुख हैं, जनजातियों की अपनी विशिष्ट नृत्य शैली भी होती है, इनके

द्वारा कर्मा नृत्य, शैला नृत्य, नयन जोगिन नृत्य आदि का प्रदर्शन उत्सवों अनुकूल किया जाता है।

संगीत शिक्षण के क्षेत्र में शास्त्रपक्ष एवं क्रियात्मक पक्ष में तालमेल का अभाव

श्वेता राय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

भारतीय चिन्तन में चौसठ कलाएँ मानी गई हैं। इन कलाओं में ललित कला अन्य कलाओं से कुछ विशिष्टता रखती है। कला में कौशल के उपरान्त उपयोगिता का ध्यान रखा जाता है। ललित कलाओं में उपयोगिता की शर्त नहीं होती है।

संगीत संस्कृत भाषा का शब्द है। इसकी व्युत्पत्ति 'गै' धातु में 'क्त' प्रत्यय के योग से बने 'गीत' शब्द के पूर्व 'सम्' उपसर्ग लगाकर हुई है। 'सम्' का अर्थ 'सम्यक्' या भलीभाँति तथा 'गीत' का अर्थ गान है। अतः संगीत शब्द का पूरा अर्थ 'सम्यक् रूप से सुशोभित गान' होता है। यहाँ सम्यक् का तात्पर्य वादन तथा नर्तन से है। अर्थात् गान को उपरंजित करने के लिए, जब उसके साथ वादन और नर्तन का भी संप्रयोग होता है, तब संगीत की विधा पूर्ण होती है। गीत, वाद्य और नृत्त तीनों को संगीत कहते हैं। नृत्त के साथ अभिनय के जुड़ जाने के कारण नृत्त को नृत्य कहा जाने लगा।

संगीत शिक्षा के क्षेत्र में गुरु एवं शिष्य के भावनात्मक एवं क्रियात्मक मिलन को ही परम लक्ष्य माना गया है। संगीत सदैव से ही गुरुमुख से ग्रहण की जाने वाली विद्या रही है। कला सौन्दर्य का आविष्कार करती है और इसी के किसी विशिष्ट अंग पर अधिकार पाने के लिए घरानों का जन्म हुआ है। अनुकरण घराने का मूल तत्त्व अर्थात् आधार है। घराना और स्वतंत्र व्यक्तित्व दो परस्पर विरोधी तत्त्व हैं। शिष्य द्वारा गुरु से शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त अपनी कल्पना-शक्ति, भावाभिव्यक्ति की क्षमता, बुद्धि व कला-कौशल से अपनी शैली को सुन्दर, सरस व आकर्षक बनाने का प्रयत्न करने से ही घराना प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। आधुनिक संदर्भ में घरानों की उपयोगिता के प्रश्न महत्वपूर्ण हैं। परिस्थितियाँ बदल चुकी हैं, एक शिष्य को विभिन्न गुरुओं को देखने, सुनने तथा उनके गुणों को आत्मसात् करने की प्रचुर सुविधाएँ उपलब्ध हैं। अपनी रुचि, रुझान तथा क्षमता के अनुसार वह अपनी शैली का चयन खुद कर सकता है। आज समय बदल गया है हमें संगीत को भी अब तार्किक ढंग से सोचना होना। अब हमें 'लकीर का फकीर' बनने से बचना होगा। अंत में फिर कहूँगा कि आज समय यह है कि संगीत नियमबद्ध तो हो लेकिन बंधनमुक्त हो।

शिवानी सोनकर
वाराणसी

भारतीय समस्त कलाओं का लक्ष्य विद्वानों ने मोक्ष बताया है। मोक्ष अर्थात् मुक्ति। मुक्ति का अर्थ राग रहित हो जाना है, आत्मा में कोई भौतिक और सांसारिक व्यसन न रह जाना दूसरे शब्दों में सतो गुण, तमोगुण और रजोगुण का नाश हो जाना। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सबसे उपयुक्त कला संगीत मानी गयी है। संगीत अंतःकरण को पवित्र बनाकर अज्ञान के आवरण को भंगकर देता है और तब आत्मज्ञान की प्राप्ति होने के संगीत साधक मुक्त हो जाता है। आध्यात्मिक ज्ञान की उपलब्धि संगीत के विकास से होती है जब संगीत साधक की साधना चरम उत्कर्ष पर पहुँचती है तब उसका अंतःकरण आध्यात्मिक ज्ञान की ज्योति से आलोकित हो जाता है संगीत के द्वारा चित्त की एकाग्रता तथा मनः स्थिरता के साथ-साथ आध्यात्मिक ज्ञान का विकास होता है। मनुष्य सांसारिक प्रपंच से ऊपर उठ जाता है वह जाति-पाति की भेद-भावना से मुक्त हो जाता है। उसके सामने धनवान-निर्धन, ऊँच-नीच, सभी व्यक्ति समान परिलक्षित होते हैं। इस प्रकार संगीत के द्वारा आध्यात्मिक विकास और आध्यात्मिक विकास के द्वारा सामाजिक प्राणियों में समत्व बुद्धि का विकास होता है।

संगीत का मूलाधार स्वर है जो नाद का ही परिमार्जित रूप है। चित्त और बुद्धि अपने आप उस समय नाद के उस संगीत में लीन हो जाता है इसलिए संगीत को नाद योग का सर्वनिष्ठ रूप माना गया है। संगीत के इस अपार महिमा के कारण ही प्रायः सभी धर्मों ने, सभी भक्तों ने, सभी उपासकों ने इस आत्मनिर्भर संगीत की शरण ली है।

सौन्दर्य शास्त्र

प्रियंका पाण्डेय
वाराणसी

भारतवर्ष में सौन्दर्य तत्व मीमांसा ऋग्वेद से प्राप्त हुई है और सौन्दर्य चिन्तन की एक समृद्ध और पुरानी परम्परा रही, जिसके अन्तर्गत काव्य सौन्दर्य सम्बन्धी प्रायः सभी प्रश्नों पर मौलिक रूप से विचार किया है। भारतीय इतिहास में सौन्दर्य का विशेष महत्त्व है, यही सौन्दर्य चारुत्व, रमणीयता, शोभा, कान्ति, चमत्कार, वैचित्र्य आदि नामों से जाना जाता है। यद्यपि 'सौन्दर्य' (सुन्दर) शब्द का अर्थ पाश्चात्य के ऐस्थेटिक्स के निकट है किन्तु पूर्णतया उसके समान अर्थ में उसका प्रयोग भारतीय साहित्य में नहीं मिलता। फिर भी सौन्दर्य शास्त्र को लालित्य शास्त्र अथवा नन्दन शास्त्र कहकर ऐस्थेटिक्स के पर्यायवाची शब्द में लेते हैं और यह मानते हैं कि जब कोई वस्तु या कला भौतिक या मानसिक रूप से हमें ऐन्द्रिय आनन्द का अनुभव कराती है तो वह सौन्दर्य की वस्तु है या

कला है। अर्थात् 'किसी कलाकृति अथवा वस्तु को देख कर आनन्द की सृष्टि होने को सौन्दर्य बोध कहते हैं।'

के० एस० रामास्वामी के अनुसार "सौन्दर्य शास्त्र कला में अभिव्यक्त सौन्दर्य का विज्ञान है।"

डॉ० कांतिचंद पाण्डेय के अनुसार "सौन्दर्य शास्त्र ललित कलाओं का विज्ञान और दर्शन है।"

डॉ० एस० एन० घोषाल ने सौन्दर्य तत्त्वों का विभाजन ऐतिहासिक और सांस्कृतिक, कलात्मक, दार्शनिक एवं काव्यात्मक इन चार भागों में किया है। सौन्दर्य शास्त्र का मूल विषय सौन्दर्य के स्वरूप की व्याख्या है।

संगीत में सौन्दर्यशास्त्र

डॉ० रामशंकर
वाराणसी

संगीत की परम्परा वेदों से ही प्रारम्भ हो जाती है, शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर में संगीत के सन्दर्भ में सौन्दर्यशास्त्र के कतिपय प्रमुख तत्त्वों के विषय में सामान्य संकेत सूत्र मिलते हैं। संगीत का आधार नाद है और नाद में कला सौन्दर्य की सृष्टि का रहस्य है। विभिन्न स्वरों और श्रुतियों में अनुक्रम, तारतम्य और समन्वय स्थापित कर संगीतकार रागों की सृष्टि करता है। राग ही वास्तव में उसकी कलाकृति है। संगीत सौन्दर्य उस रस में निहित है, जो रजोगुण, तमोगुण को उभार कर चेतना विशेष में परिवर्तित कर देता है और उन क्षणों में मनुष्य काम, क्रोध, शोक, लोभ और चिंता से मुक्त होकर ब्रह्मानन्द सहोदर संगीत आनन्द में अवगाहन करने लगता है। प्राचीन काल से लेकर आज तक संगीत के ग्रन्थों में राग, स्वर और लय की जो परिभाषायें दी गई हैं, उनसे स्पष्ट होता है कि संगीत का सम्बन्ध रंजकता, आकृष्टता, संवेदना, स्निग्धता से है और ये तत्त्व ही मिलकर सौन्दर्य तत्व सार्थक करते हैं। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि यदि संगीत में सौन्दर्य नहीं है तो वह संगीत नहीं है। यदि संगीत को सौन्दर्यशाली बनाना है तो सौन्दर्य शास्त्र के सभी मूलभूत तत्त्वों पर ध्यान देना आवश्यक है।

संगीत शास्त्र: एक अध्ययन

श्रेया श्रीवास्तव
वाराणसी

मानव सभ्यता के विकास में संगीत शास्त्र का जन्म सैकड़ों हजारों वर्षों के बाद हुआ होगा। मनुष्य में जैसे-जैसे चेतना बढ़ी, उसने अपने कार्यों को समझने का प्रयत्न किया तभी संगीत शास्त्र का जन्म हुआ। संगीत शास्त्र संगीत के सैद्धान्तिक स्वरूप की विवेचना करता है। संगीत के विद्यार्थियों को इन सिद्धान्तों को दृढ़तापूर्वक पालन करते

हुए आगे बढ़ना पड़ता है। जब वह इन सिद्धान्तों का अनुसरण करने में भूल करता है तो उसकी अयोग्यता प्रकट होती है और पुनः उन्हें पालन करने के लिए बाध्य किया जाता है। जनरूचि में जैसे-जैसे परिवर्तन होता है वैसे शास्त्र में भी परिवर्तन आवश्यक है। शास्त्र संगीत के सिद्धान्तों का पुनः निरीक्षण करता है, आंकता है और शब्दों में व्यक्त करता है। संगीत के दो पक्ष होते हैं—पहला क्रियात्मक पक्ष जो प्रायोगिक होता है और दूसरा सैद्धान्तिक पक्ष जो शास्त्रात्मक होता है। इस प्रकार संगीत क्रिया और शास्त्र दोनों एक दूसरे पर आश्रित हैं। संगीत के महान शास्त्रकार भरत जी हैं, जिन्होंने नाट्यशास्त्र नामक ग्रन्थ की रचना की। एक अच्छे शास्त्रकार के लिए यह आवश्यक है कि उसे दोनों प्रकार के शास्त्र का ज्ञान रहे, साथ ही गान-बजाने की क्षमता भी हो।

अतः संगीत शास्त्र के अन्दर गायन, वादन व नृत्य तीनों ही समाहित हैं। संगीत शास्त्र के अन्तर्गत संगीत से सम्बन्धित जितनी चीजें हैं वे सब आयेंगी। जैसे—ध्रुवपद, धमार, ख्याल, हवेली संगीत, संगीत का इतिहास, वर्तमान संगीत की स्थिति इत्यादि। एक शास्त्रकार का कार्य केवल ऐतिहासिक तथ्यों की खोज करना नहीं बल्कि वर्तमान संगीत को भली भाँति समझना भी है।

हवेली संगीत की परम्परा

डॉ० वेणु वनिता
बरेली

भगवान श्री कृष्ण का कथन है कि—‘वेदानां सामवेदोऽस्मि’। नाद ही ब्रह्म है। व्यापक परमात्मा में ही आत्मा अनुरंजन करती है। भगवान के हाथ में वेणु है और उन्होंने नारद से कहा है कि जहाँ-जहाँ मेरे भक्तगण गायन करते हैं, वहाँ-वहाँ मैं उपस्थित रहता हूँ। हवेली संगीत की परम्परा का मूल वेद में है और वह स्वयं ईश्वर से ही अवतरित हुई है। संगीत का गुण तन्मयता है और इसके ऊर्ध्वमुखी होने पर मनुष्य ईश्वर की ओर प्रवृत्त होता है। हवेली (विशाल मन्दिर) में जो किर्तन होता है, वह सांगीतिक पूजा ही होती है। पुष्टिमार्गीय सम्प्रदायों के मंदिर ‘हवेली’ के नाम से प्रसिद्ध हैं। देव-पूजन मनुष्य मात्र आराधना, उपासना, प्रार्थना, अर्चन, आरती, स्तुति अथवा कीर्तन के द्वारा करते हैं। हवेली में यह सब संगीत से ही होता है। पूजा की कोई भी क्रिया संगीत-विहीन नहीं होती। यह प्रार्थना नहीं है, क्योंकि भक्त को भगवान से कुछ माँगना नहीं होता। भक्त तो सिर्फ प्रभु की कृपा-दृष्टि का याचक होता है। यही कारण है कि भक्तगण इस सम्प्रदाय को उत्कृष्ट मानते हैं।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि हवेली संगीत में रोज गाये जाने वाले पद नित्य-लीला के पद ही होते हैं। प्रत्येक दर्शन की पदावली में उसी के अनुरूप भाव होते हैं और पदों के राग भी समयानुकूल होते हैं। इस संगीत में दर्शन का जो भाव होता है, उसके द्वारा कई बार चक्षुविहीन भक्तगण भी दर्शन-लाभ का अनुभव करते हैं।

भारतीयसंस्कृतौ प्राचीनकालादारभ्य अस्माकं देशे विभिन्नेभ्यः प्रदेशेभ्यः राज्ञेभ्यः स्व-स्व राज्याङ्गणे शासने च नैतिकशिक्षां पालयितुं वर्धयितुं विशिष्टपुरुषाणां परामर्शकानां विशिष्टं स्थानं कल्पयन्ति स्म। तत्रापि —

पठकाः पाठकाश्चैव ये चान्ये शास्त्राचिन्तकाः।

सर्वे व्यसनिनो मूर्खा यः क्रियावान् सः पाण्डितः।

अध्येता अध्यापयिता तथा अन्ये शास्त्राचिन्तकाः सर्वे मूर्खा अर्थात् असपफलाः भवन्ति यस्तावत् शास्त्रोक्तदृष्ट्या तथा स्वविवेकेनापि आचरति सः ज्ञानी पण्डितो भवति। एवमेव

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशाङ्गजन्मनः।

स्वं स्वं चरित्रां शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।

सम्पूर्णे विश्वे भारतीयवैदृष्यं कथं व्याप्तमिति इत्यस्य पठिवयः दीयते।

एवमेव — अहिंसा परमो धर्मः। अमेध्यो वै पुरुषो यदनृतं वदति। सः मनुष्यः अपवित्राः यः असत्यं वदति। नानृतात्पातकं परम्। असत्यात् पापं किमपि नास्ति इत्यादीभिः वाक्यैः नैतिकशिक्षां बोधयितुं प्रयत्नः प्रचलति।

समाजे व्यवहारज्ञानस्य महती आवश्यकता वर्तते। यतोहि उक्तम् बुद्धिर्यस्य बलं तस्य। केवलं धनेनैवं सर्वसि(यति इति वक्तुं न शक्यते यथा —

आरोग्यं विद्वत्ता सज्जनमैत्री महाकुले जन्म।

स्वाधीनता च पुंसा महदैश्वर्यं विनाप्यर्थैः।

अर्थं विना अपि स्वास्थ्यं, पाण्डित्यं, सत्संगतिः, विशिष्टकुले जन्म तथा स्वाधीनता इत्येतत् एव अर्थवत् स्य भवति। तथैव —

अनाहुतः प्रविशति अपृष्टो बहुभाषते।

अविश्वस्ते विश्वसिति मूढचेता नराध्माः॥

समाजे अनाहुतः प्रवेशः कुत्रापि न करणीयः। स्वयं अपृष्टे सत्यपि भाषणं कुर्यात् यत्र विश्वासो न कर्तव्यः तत्र विश्वासं नैव कुर्यात् एवं भोयेत् एतादृशाः मूर्खबु(यः तथा अध्माः जनाः भवन्ति अथोक्तम्—

दीनान्ध्रघृगबध्नि नोपास्याः कदाचन।

एतादृशान् जनान् दृष्ट्वा प्रायः जनाः परिहासमपि कुत्राचित् कुर्वन्ति। वस्तुतः परिहासः नैव कर्तव्यः।

उपकारपफलं मित्रामपकारोऽरिलक्षणम् अनेन मित्रा शत्रुयोः लक्षणं स्पष्टं भवति। अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् लोकेऽस्मिन् शुभाशुभ कर्मणः पफलं तु प्रत्येकं मनुष्येण अवश्यमेव भोक्तव्यामिति।

एतादृशव्यवहारवाक्यानि नैतिकशिक्षां बोधयितुमपि उपकारकानि भवन्ति समाजे इति।

भारतीय सौन्दर्यशास्त्र में संगीत की अवधारणा

चन्दन विश्वकर्मा
वाराणसी

वैदिक युग में जिसे गान्धर्वतत्व कहा जाता था, वही आज संगीत शास्त्र के नाम से जाना जाता है। भारतीय संगीत शास्त्र और पश्चिमी म्युजिकोलॉजी में कुछ समानताएं हैं जिसमें प्रथम यह है कि दोनों अपनी परम्परा में अपने संगीत का उत्स और श्रोत तलाशने का प्रयत्न करते हैं। अर्थात् संगीत का इतिहास, या उसका प्राक् अतीत।

भारतीय संगीतशास्त्र पश्चिमी म्युजिकोलॉजी भिन्न है, वह महत्वपूर्ण है। वह बिन्दु है दृष्टि है। भारतीय दृष्टि (अर्थात् कला व सौन्दर्य का भारतीय दर्शन) से संगीतशास्त्र में संगीत को उत्स सामगान से मानते हैं जो वैदिक समय की ऋषि सभ्यता का कालखण्ड है, साथ ही वे पूर्व वैदिक समय से प्राप्त संगीत-उद्धरणों को भी अस्वीकार नहीं करते, बल्कि उन साक्ष्यों को क्रम देते हैं।

ग्रीक दार्शनिक प्लेटो ने सुकरात की बातें लिखी। सुकरात ने कहा, कला अनुकृति है इसलिये ये वह सुन्दर नहीं है। जो प्रेरणा है वह सुन्दर है, जो गुण है वही सुन्दर है। अरस्तु ने कहा है कि चूँकि कलाकार प्रकृति की अनुकृति करता है और प्रकृति सत्य की अनुकृति है इसलिए कला अनुकृति की अनुकृति है। अपने काव्यशास्त्र 'दी पोयेटिका' में नाटक के हवाले से लिखा है कि अभिनय कला अनुकरण की कला है, संगीत भी। अभिनेता अभिनय में अनुकृति करता है जबकि भारतीय सौन्दर्य शास्त्र के अनुसार अभिनेता चरित्र को अभिनय करता है। हैराल्ड आस्बॉर्न ने अपनी पुस्तक 'दी आर्ट आफ ऐप्रिसियेशन' में सौन्दर्य की उत्तर आधुनिक व्याख्या की है। वे कहते हैं कि बिना सौन्दर्यधर्मी दृष्टि और मूल्यों के कला बाँझ है।

सांगीतिक बंदिशों में अलंकार-योजना का शास्त्रगत अनुशीलन (तबला वाद्य के संदर्भ में)

दीपक त्रिपाठी
वाराणसी

यह सर्वमान्य है कि पाँचों ललित कलाओं में संगीत एवं साहित्य को उच्च स्थान प्राप्त है। संगीत जहाँ नादब्रह्म की उपासना है वहीं साहित्य शब्द ब्रह्म की। शब्द और नाद के योग से ही जीवन अपने अर्थ को समर्थ करता है।

संगीत (गायन, वादन, नृत्य) में बंदिश की अहम भूमिका होती है, बंदिश अमूर्त कल्पना की मूर्त संकल्पना है जिनके माध्यम से कला साधक अपने भावों को व्यक्त करता है।

तबला वाद्य आज संगीत जगत् में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। कला साधको, तथा कला चिंतकों के निरंतर अनुशीलन का ही प्रतिफल है कि तबला वाद्य आज प्रायोगिक पक्ष के साथ-साथ शास्त्र पक्ष में भी समृद्ध हो चुका है। यह वाद्य संगीत की लगभग सभी शैलियों में प्रायोगिक रूप में उपयुक्त लगता है, यथा शास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत, लोक संगीत या फिल्मी संगीत। स्वतंत्र वादन (तबला वाद्य) में प्रयोग लायी जाने वाली सामग्री को सामूहिक रूप से 'बंदिश' कहते हैं। रचना, कम्पोजीशन आदि शब्द बंदिश के ही पर्याय हैं। विषयान्तर्गत बंदिशों में अलंकार-योजना को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

ऐसा ही एक उदा० हम तबला वाद्य की सर्वाधिक प्रचलित रचना 'कायदा' जिसे हर कलाकार अपने वादन में प्रस्तुत करता है, में देखें—

दिल्ली घराने का कायदा

धाती	धागे	नाधा	तिरकिट	धाती	धागे	तिना	गिना
ताती	तागे	नाता	तिरकिट	धाती	धागे	धिना	गिना

उपर्युक्त बंदिश में भी अन्त्य पद तिनागिना धिनागिना आदि तुकबन्ध है जो अन्त्यानुप्रास के सदृश है।

अतः उपर्युक्त विश्लेषण से ध्वनित होता है कि तबला वाद्य की बंदिशों में भी अलंकार योजना का प्रयोग भली-भाँति हुआ है।

विभिन्न संस्कृत ग्रन्थों में वर्णित उपरूपक

स्वाति त्रिपाठी
वाराणसी

नाट्य सामूहिकता की भावना पर आघृत एक विलक्षण रंगप्रयोगात्मक मिश्रित कला है भारत में नाट्य मीमांसा की सुदीर्घ परम्परा रही है और इसमें आचार्य भरत का नाट्य शास्त्र सर्वसम्पन्नता का अक्षय आलोक रहा है। नाट्य शास्त्र में 10 रूपकों के अतिरिक्त कुछ गौण रूपकों की भी चर्चा प्राप्त होती है। इन उपरूपकों में रूपकों की संवाद प्रियता

से भिन्न नृत्य की प्रधानता प्राप्त होती है। यह बीज आगे चलकर उपरूपक नामक वृक्ष में परिणित होते हैं। उपरूपकों की शृंखला में सर्वप्रथम अग्निपुराण का नाम आता है जिसमें सोलह उपरूपकों की चर्चा की गई है। महाराजा भोज ने बारह एवं नाट्य दर्पण कार रामचन्द्र-गुणचन्द्र ने तेरह एवं आचार्य विश्वनाथ ने अपने ग्रन्थ साहित्य दर्पण में अट्ठारह एवं शारदातनय द्वारा रचित ग्रन्थ भाव प्रकाशन में बीस उपरूपकों की चर्चा की गई है।

इस प्रकार उपरूपकों का विवेचन भिन्न-भिन्न ग्रन्थों में प्राप्त होता है परन्तु विभिन्नताओं के बावजूद इनकी एक सुदीर्घ परम्परा संस्कृत ग्रन्थों में प्राप्त होती है।

नृत्यकला के साहित्यिक स्रोत

स्वायंजित सत्यम्बदा
वाराणसी

भारतीय नृत्यकला के मूल स्रोत संस्कृत साहित्य में विद्यमान हैं। ये साहित्य भारत की अमूल्य निधि हैं और विश्व के सुधीजनों के लिए यह ज्ञान का भण्डार है। अन्य विषयों के अतिरिक्त इसमें नृत्यकला के प्रत्येक आयामों पर भी विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है।

नृत्य का इतिहास उतना ही प्राचीन है जितना मानव जाति का। इसका सबसे प्राचीन साहित्यिक प्रमाण ऋग्वेद व अन्य वेदों में मिलता है। ऋग्वेद के उषा सुक्त में नृत्य का वर्णन आता है। साहित्य नृत्य और संगीत की भागीदारी का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण यह है कि इन्द्र आदि देवता जब ब्रह्मा के पास नाट्य वेद की उत्पत्ति के लिए आग्रह करने के लिए गए और कहा :

“क्रीडनियकमिच्छामो दृश्यम् श्रव्यम् च यदभवेत्।”

अर्थात् हम एक ऐसी क्रीड़ा की इच्छा करते हैं जिसको देखने और सुनने में आनन्द की प्राप्ति होती हो। ये देखने और सुनने की क्रीड़ा ही क्रमशः नृत्य और साहित्य हैं। भारतीय संस्कृति, रामायण, महाभारत और अन्य पुराणों में, जो संस्कृत साहित्य के आधार ग्रन्थ माने जाते हैं। नृत्य सामग्री मोतियों की तरह बिखरी पड़ी है।

भारत के नाट्यशास्त्र में इतिवृत्ति, इतिहास और दस प्रकार के प्रयोग आदि सब साहित्य के बीज और मूल सिद्धान्त भी हैं। भारत के बाद लिखे गए संस्कृत नाटक अधिकांशतः उनके द्वारा बताए गए दस प्रयोगों या रूपकों में से किसी न किसी के आधार पर ही लिखे गए हैं। अश्वघोष का “चारिपुत्र” एक प्रकरण है। भास के लिखे हुए रूपकों में ‘दूत वाक्य’ से लेकर ‘चारुदत्त’ तक तेरह नाटक भारत द्वारा अविष्कृत दस प्रयोगों में से किसी के आधार पर ही लिखे गए हैं। कालिदास के नाटकों में तो नृत्य की सामग्री इस प्रकार अंतर्भूत है कि उसको हटाने से नाटक की रसात्मकता अन्तर्गत पड़ सकती है। “मालविकाग्निमित्रम्” में नृत्य स्पर्धा का दृश्य और “विक्रमोर्वशीयम्” में उर्वशी का नृत्य और मेघदूत आदि में वर्णित अन्य नृत्य वर्णन से पता चलता है कि कालिदास या तो एक

कुशल नर्तक थे या उस कलाके मर्मज्ञ थे। कालिदास की सफलता से प्रतीत होता है कि उच्च कोटि का साहित्य नाट्य के सिद्धान्तों से अनभिज्ञ होकर लिखा नहीं जा सकता।

कालिदास के नाटकों को आजकल नाटक के रूप में और नृत्य नाटिकाओं के रूप में अधिक प्रस्तुत किया जाता है। साहित्यकार जिस कथा की कल्पना करते हैं। उसको नृत्य का सादृश रूप से साकार करता है।

लोकगीतों में सौन्दर्यशास्त्र का महत्व

मनु प्रकाश मौर्य
वाराणसी

लोकगीतों के संदर्भ में हमें विशेष रूप से कोई एक मत नहीं प्राप्त होता है। भिन्न-भिन्न संगीत शास्त्रीयों एवं साहित्यकारों ने लोकगीत की परिभाषा के लिए अपने-अपने मत बताए हैं। जहाँ विश्व कवि रविन्द्रनाथ टैगोर ने बताया कि, "जनता के अर्थ चेतन मन की स्वच्छन्द रचना लोकगीत है।" वहीं पैरी ने लोकगीत को "मानव का उल्लासमय संगीत" बताया है। एक ओर ग्रिम महोदय ने बताया है कि, "लोकगीत तो स्वयं बनते हैं, इनकी सृष्टि में किसी का हाथ नहीं रहता; तो दूसरी ओर राल्फ विलियम्स ने लोकगीत को 'जंगल के वृक्ष' समान बताया है, परन्तु वास्तव में लोकगीत लोक की परंपरागत विरासत के साथ-साथ अनुभूत-अभिव्यक्ति तथा हृदय का उद्गार है।

उत्तर प्रदेश में लोकगीत के कई प्रकार प्रचलित हैं। अगर इनसे अभिव्यक्त होने वाले रसों एवं भावों की बात की जाए तो इनसे काव्यशास्त्र में वर्णित 9 रसों एवं भावों की उत्पत्ति होती है। उत्तर-प्रदेश में मुख्य रूप से कजरी, चैती, बारहमासा, बिरहा, बेलवरिया, लावनी, गारी, जंतसर, झूमर, लचारी, विवाह, सोहर, लोरिका, देवी-गीत, धोबी-गीत, नटुआ गीत, कहंरही गीत आदि लोकगीत के प्रकार गाए जाते हैं। 'कजरी' और 'बारहमासा' में वियोग (श्रृंगार रस) रस की अधिकता होती है, जिसका स्थायी भाव 'रति' है। इसी प्रकार 'चैती' में संयोग (श्रृंगार रस) रस की प्रधानता होती है। बिरहा में राष्ट्रीय गीत, वैराग्य गीत, श्रृंगार और भक्ति रस से ओत-प्रोत गीत तथा बेलवरिया में भक्ति रस से परिपूर्ण गीत गाया जाता है। "गारी" लोकगीत में हर्ष एवं उल्लास के साथ-साथ हारा एवं श्रृंगार रस, जिसका स्थायी भाव क्रमशः हास्य एवं रति है, का वर्णन होता है। जंतसर नामक लोकगीत में करुण (स्थायी भाव शोक), श्रृंगार (स्थायी भाव रति), वीर (स्थायी भाव उत्साह) आदि रसों की उत्पत्ति होती है। इसी प्रकार अन्य लोकगीतों में भी भिन्न-भिन्न प्रकार के रसों एवं भावों का महत्वपूर्ण स्थान है। रस एवं भाव के अभाव में लोकगीत में सौन्दर्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

संगीत में तीन प्रमुख शक्तियाँ हैं—स्वर शक्ति, लय शक्ति और शब्द शक्ति। ये तीनों शक्तियाँ मिलकर ईश्वर से साक्षात्कार करा सकती हैं इसलिए स्वर को ईश्वर, शब्द को ब्रह्म और लय-ताल को शिवा कहा गया है। ये तीनों शक्तियाँ हमारे वेद-मंत्रों में स्थित हैं जिसका ज्ञान वैदिक छन्दों के माध्यम से किया जा सकता है। इन्हीं वैदिक छन्दों से भारतीय तालों का सृजन हुआ है।

सामवेद के मंत्रों का सस्वर पाठ किये जाने के बाद को सभी स्वीकार करते हैं। साम-गान मंत्र छन्दबद्ध गाये जाते थे। छन्दों का सम्बन्ध मात्राओं से होता है और विभिन्न मात्रों के समूह द्वारा विविध प्रकार के तालों की रचना की जाती है।

वैदिक छन्दों की मात्राओं के माध्यम से विद्वान ने विश्लेषण के आधार पर स्वरों की संख्या सात बताई है उसी प्रकार तालों की संख्या भी सात बताई है जो क्रमशः 4, 6, 8, 10, 12, 14 व 16 मात्राओं की तालें हैं। संगीतज्ञ ताल लिपि पद्धति में सम के लिए + जो कि योग का चिन्ह है तथा खाली के लिए 0 शून्य का चिन्ह जो आकाश का प्रतीक है।

शून्य का सम्बन्ध पंक्ति छन्द से है जिसमें 40 मात्राएँ होती हैं जो 8 मात्राओं के पांच विभागों में विभाजित होता है इस ताल की मात्रा का पूर्वांक 4 है। जोकि योग के चिन्ह का द्योतक है इसी चिन्ह के आधार पर त्रिताल की रचना की गई है। जिसमें 16 मात्राएँ होती हैं और इस ताल की 16 मात्राएँ 16 कलाओं को प्रदर्शित करती हैं।

महाराणाकुम्भाकृतसंगीतराज का विषयवैशिष्ट्य

स्नेहा गुप्ता
वाराणसी

15वीं शताब्दी में मेवाड के राणा कुम्भा का नाम एक साहित्यकार, संगीतकार और नाटककार के रूप में सर्वोच्च है। राणा कुम्भा ने संस्कृत एवं अन्य भाषाओं में ग्रन्थों की रचना कर 15वीं शताब्दी के साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान दिया। राणा कुम्भा का सम्बन्ध मेवाड राजवंश के सबसे विख्यात परिवार गुहिलोंत से था जिसने मेवाड राज्य पर लगातार चौदह शताब्दियों तक शासन किया। कुम्भा ने मेवाड पर पैंतीस वर्षों तक ऐश्वर्यपूर्ण शासन किया। वे साहित्य एवं कला के महान समर्थक थे। उन्होंने साहित्य सम्बन्धी आलोचना, धर्म, पद्यशास्त्र एवं नाटक सम्बन्धी रचनाएं, संगीत, स्थापत्य कला तथा कामशास्त्र सम्बन्धी अनेक ग्रन्थों की रचना की।

राणा कुम्भा स्वयं संस्कृत साहित्य में निष्णात थे। उनके द्वारा संस्कृत भाषा में रचित साहित्यिक कीर्तिस्तम्भस्वरूप संगीतराज नामक ग्रन्थ संगीतशास्त्र, नृत्य, सांगीतिक वाद्यों एवं रस सिद्धान्तों पर एक विश्वकोशीय कार्य है। कुम्भा ने लगभग 16000 श्लोकों के इस बृहद् ग्रन्थ के ज्यादातर श्लोकों में अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग किया है किन्तु कुछ श्लोकों में आर्या, वसन्ततिलक, शार्दूलविक्रीडित आदि छन्दों का भी प्रयोग किया है। उन्होंने इस ग्रन्थ को पाठ्य, गीत, वाद्य, नृत्य एवं रस इन पाँच रत्नकोशों में विभाजित किया है। प्रत्येक कोश चार उल्लासों में तथा प्रत्येक उल्लास चार परीक्षणों में विभक्त है। इस प्रकार इस ग्रन्थ में कुल पाँच रत्नकोश, बीस उल्लास तथा अरसी परीक्षण हैं। प्रथम पाठ्य रत्नकोश में मंगलाचरण, ग्रन्थकार परिचय, पूर्वाचार्य स्मरण, सभी परीक्षणों की सूची एवं प्रत्येक कोश का विषय-विन्यास तथा संगीत के साथ व्याकरण के छन्द अलंकार आदि के सम्बन्ध को स्पष्ट किया है। इसमें कुम्भा ने मूलतः मातृपक्ष या गीत के काव्यांश का विस्तृत विवेचन किया है। द्वितीय रत्नकोश में संगीत के विविध सिद्धान्तों एवं विषयवस्तु को अत्यन्त विस्तृत रूप से विवेचित किया है तथा तृतीय रत्नकोश में वाद्यों के विस्तृत व्याख्यान के साथ तालों का भी विवेचन किया है। चतुर्थ रत्नकोश में नाट्यशास्त्र के निर्माण से सम्बन्धित विविध पक्षों को स्पष्ट करते हुए अभिनय के प्रकार तथा नृत्य का विशद विवेचन किया है। ग्रन्थ के अन्तिम रस रत्नकोश में विस्तार से रस निरूपण किया है एवं इसी रत्नकोश के अन्तिम परीक्षण में कुम्भा ने ग्रन्थ रचना का महत्व और कारण भी स्पष्ट किया गया है। इस प्रकार संगीत के समस्त तत्वों का विस्तृत एवं विशद व्याख्यान करने वाले इस ग्रन्थ को संगीत जगत् में भरत के नाट्यशास्त्र एवं शारंगदेव के संगीत रत्नाकर के सदृश समादर प्राप्त है।

वायुपुराण में वर्णित सांगीतिक तत्त्वों की समीक्षा

मंजू देवी
वाराणसी

पुराण शब्द का अर्थ है 'प्राचीन'। हिन्दी का 'पुराना' शब्द इसी से निष्पन्न हुआ है। ब्राह्मण ग्रन्थों में यह पुरानी कथा के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। वस्तुतः पुराण एक संग्रह ग्रन्थ है। इनमें समय-समय पर संशोधन, संयोजन, संकलन, परिवर्तन होता रहा है। प्राचीन समय के वे एक प्रकार विश्वकोष हैं। महापुराणों की संख्या 18 हैं, जो इस प्रकार हैं—मार्कण्डेय, मत्स्य, भागवत, भविष्य, ब्रह्म, ब्रह्मवैवर्त, ब्रह्माण्ड, विष्णु, वायु, वराह, वामन, नारदीय, लिंग, पद्म, अग्नि, कूर्म, स्कन्द और गरुण पुराण।

मुख्य रूप से पुराणों का वर्ण्य विषय सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर, वंशानुचरित है। इन विषयों के अतिरिक्त भी पुराणों में अन्य विषय भी प्राप्त होते हैं जिनमें संगीत भी अपना स्थान रखता है। मुख्य रूप से संगीत विषयक सामग्री वायुपुराण, मार्कण्डेयपुराण,

हरिवंशपुराण और विष्णुधर्मोत्तर उपपुराण में प्राप्त होती है। यहाँ हम वायुपुराण में वर्णित संगीतिक तत्त्वों पर प्रकाश डालेंगे।

वायुपुराण के 86 और 87 इन दो अध्यायों में संगीत विषयक सामग्री मिलती है। सर्वप्रथम इसमें स्वरमण्डल का परिचय दिया गया है। यथा—

सप्तस्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्च्छना चैकविंशतिः।

तानाश्चैकोनपंचाशत् इत्येतत्स्वरमण्डलम्॥

सात स्वर, तीन ग्राम, इक्कीस मूर्च्छना और उनचास तान की सामुदायिक संज्ञा स्वरमण्डल है।

इसके अतिरिक्त प्रस्तुत पुराण में यज्ञ तान, ग्राम में निरूपित तानों की संख्या व नाम, अलंकार, गीतक, गीतक के प्रकार इत्यादि सांगीतिक तत्त्वों का स्पष्ट व्यवस्थित विवरण प्राप्त होता है।

शास्त्रीय संगीत में निहित शास्त्र

गरिमा गुप्ता
वाराणसी

‘संगीत’ एक कला है और इसका शास्त्र ‘संगीत शास्त्र’ है। ‘संगीत शास्त्र’ ज्ञान के आदि स्रोत स्वरूप भरतकृत ‘नाट्यशास्त्र’ तत्पश्चात् मतंग कृत ‘बृहद्देशी’ दत्तिल कृत ‘दत्तिलम्’ आदि शास्त्र ग्रन्थों में गान्धर्व गान, मार्ग, देशी आदि संगीतिक अवधारणाओं का सुस्पष्ट विवेचन स्पष्ट होता है। संगीत शास्त्र में मूलरूप से संगीत के मूल सिद्धान्तों का विस्तार एवं मूलभूत अवधारणाओं की सज्ञानता अत्यन्त आवश्यक है। संगीत शास्त्र के मुख्य दो आयाम हैं

1. प्रयोग पक्ष
2. शास्त्र पक्ष

किसी भी कला के दो पहलू होते हैं — लक्ष्य एवं लक्षण। लक्ष्य यानी क्रिया और लक्षण यानी क्रिया के बारे में विचार। जैसे — किसी राग अथवा बंदिश को प्रत्यक्ष रूप से गाना लक्ष्य है और उसके बारे में सोचना, समझना, कहना लक्षण है। संगीत की क्रिया की सीखने-सिखाने एवं समझने-समझाने के लिये लक्षण आवश्यक है। भारत में जिस प्रकार संगीत की दीर्घ एवं विकसित परम्परा रही है उसी प्रकार उसके सिद्धान्त पक्ष की भी अत्यन्त प्राचीन एवं सुदृढ़ परम्परा रही है। किसी विषय एवं उसके अध्ययन और अध्यापन में वही सम्बन्ध होता है जो साध्य और साधन में। इसके साथ ही साध्य के अनुरूप ही साधन का निर्धारण किया जाता है। संगीत द्वारा शिक्षा से तात्पर्य प्राचीन काल में वेद मन्त्रों द्वारा प्रदान किया जाने वाला ज्ञान से तथा विद्यालय में छात्रों को दी जाने वाली शिक्षा से है। जबकि संगीत की शिक्षा के अन्तर्गत संगीत विषय के शास्त्र व क्रिया पक्ष दोनों आ जाते हैं। संगीत एवं संगीत के सिद्धान्तों को परिभाषित सुस्पष्ट व्याख्यायित

करना संगीत शास्त्र का कार्य है तथा संगीत को प्रस्तुतिकरण के माध्यम से जनों तक संप्रेषित करना संगीतज्ञ का दायित्व है।

संगीत शास्त्र में परिलक्षित तन्त्री वादन के विभिन्न आयाम

रितु सिंह
वाराणसी

भारतीय संगीत में मूल तत्वों की दृष्टि से वाद्य कला वास्तविक रूप में संगीत की पूर्णरूपेण प्रतिनिधि कला है। प्राचीन काल से वर्तमान समय तक संगीत में तन्त्री वाद्यों का महत्त्व सर्वाधिक रहा है। प्राचीन काल में सभी तन्त्री वाद्यों को वीणा की संज्ञा प्राप्त थी। वैदिक ऋषि याज्ञवल्क्य ने अपनी स्मृति में वीणा की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए कहा है कि —

“वीणा वादन तत्त्वज्ञः श्रुति जाति विशारदः।

तालज्ञश्चाप्रयासेन मुक्तिमार्गं निगच्छति॥”

शास्त्र पक्ष के दृष्टिकोण से संगीत शास्त्र में तन्त्री वाद्यों के वादन हेतु विभिन्न आयामों का विस्तृत विवेचन किया गया है। तन्त्री वादन के शास्त्रीय पक्ष के अन्तर्गत वादन के लिए प्रयुक्त दक्षिण हस्त, वाम हस्त एवं दोनों हस्तों का संयुक्त रख-रखाव एवं प्रहार किया के लिए उचित अंगुली संचालन हस्त व्यापार कहलाती है, जिसका विस्तृत विवेचन शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर, पार्श्वदेव कृत संगीत समय सार, सोमेश्वर कृत मानसोल्लास इत्यादि ग्रन्थों में द्रष्टव्य है। इसी प्रकार कन्निका अथवा मिजराब के प्रहार से उत्पन्न विभिन्न बोलों के भी शास्त्रीय सिद्धान्त होते हैं जिनका शास्त्रीय निरूपण करते हुए भरत मुनि ने इसे धातु की संज्ञा से अभिहित किया है। इसके अतिरिक्त वादक के गुण-दोष, वाद्य धारण विधि, वादक का उपवेशन अर्थात् बैठक इत्यादि पक्ष ऐसे हैं जो कि तन्त्री वाद्यों के वादन में शास्त्र पक्ष के अन्तर्गत अन्तर्निहित हैं तथा इनका विस्तृत शास्त्रीय निरूपण संगीत शास्त्र में दृष्टिगोचर है जिनका निर्वहन वर्तमान काल में भी किया जा रहा है।

संगीत शास्त्र-वैदिक साहित्य में भारतीय संगीत

शुचि उपाध्याय
वाराणसी

वेद भारतीय संस्कृति के पोषक विद्याओं व कलाओं का आधार ग्रंथ है। अतः भारतीय संगीत के मूलभूत तत्वों को समझने के लिए वैदिक साहित्य का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। हमारा जो सबसे प्राचीन, नियमित और सुसम्बद्ध संगीत मिलता है वह वैदिक काल ही है।

वेद शब्द का तात्पर्य— वेद शब्द 'विद् सत्तायम्', 'विद्ज्ञाने', 'विद् विचारणे' तथा 'विद्दृष्ट्या' इन चार धातुओं से निष्पन्न होता है। इसका तात्पर्य है — जिसकी सदैव सत्ता हो, जो अपूर्व लाभप्रद हो, जो ऐहिक कामुखिक दोनों प्रकार के विचारों का कोश हो और जो लौकिक लाभप्रद हो— ऐसे ग्रंथ को वेद कहते हैं। अर्थात् वेद में सत्ता, ज्ञान एवं विचार और लाभ ये चारों गुण विद्यमान हैं।

वेद चार हैं — ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद तथा सामवेद। संगीत का मुख्य सम्बन्ध सामवेद से है किन्तु ऋग्वेद में भी संगीत विषयक सामग्री वर्तमान है।

ऋग्वेद में संगीत— इस वेद में गीत के लिए गीर, गातु, गाथा, गायन्न, गीति तथा साम शब्दों का प्रयोग होता है ऋग्वेद की रचनाएँ स्वरावलियों में निबद्ध होने के कारण स्तोत्र कहलाती थी। गीत प्रबन्धों को गाथा कहा जाता था जो एक विशिष्ट तथा परम्परागत गीत प्रकार है और इन गाथाओं का गायन धार्मिक तथा लौकिक समारोहों पर किया जाता था इनके गायक 'गायत्रिन्' कहलाते थे। ऋग्वेद में स्वर के उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित भेद पाये जाते हैं। इस वेद में तीन प्रकार के वाद्य प्रचलित थे अवनद्ध, तन्तु और सुषिर वाद्य जिसे 'नाण्ठी' कहा जाता था।

यजुर्वेद में संगीत— यजुर्वेद में उन मंत्रों का संकलन है जिनका गायन यज्ञादि के अवसर पर कर्मकाण्ड के लिए होता था। इसमें चार गायक होते थे जिनको क्रमशः होता, अध्वर्यु, उद्गाता तथा ब्रह्मा कहते थे। वीणा शब्द सर्वप्रथम यजुर्वेद में प्राप्त होता है। वीणा के अतिरिक्त आडंबर, तूणव, शंख, पाणि, तलव इत्यादि वाद्यों का उल्लेख है।

सामवेद में संगीत— सामवेद पूर्णतया संगीतमय है। सामगान में गेय छंद होते थे। यह गान भद्रमास से प्रारम्भ होता था। साम गायन के दो रूप प्रचलित थे— आर्चिक और गान संहिता। सामवेद में सप्त स्वरों के नाम प्राप्त हो चुके थे जिनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं— क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मंद्र, अतिस्वार। सामवेद का ग्राम अवरोही था तथा सामग्राम का प्रथम स्वर मध्यम था।

वैदिक काल में सप्तक के स्थान मंद्र, मध्य तथा उत्तम थे सामवेद में पाँच श्रुति जातियाँ मानी गयीं। यथा— दीप्ता, आयता, करुणा, मृदु तथा मध्य थे साथ ही इनके चिन्ह बताये गये हैं। साम गीत के प्रायः पाँच भाग हुँकार या हिंकार, प्रस्ताव उद्गीथ, प्रतिहार और निधन तथा साम के तीन गायक प्रस्तोता, उद्गाता तथा प्रतिहर्ता हैं। वैदिक काल में संगीत के लिए 'शिल्प' संज्ञा प्रयुक्त है।

‘भागवत पुराण’ एवं काँगड़ा चित्रकला : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

प्रोफेसर सरोज रानी
का.हि.वि.वि., वाराणसी

संस्कृत साहित्य ने सदैव ही भारतीय कला को अभिप्रेरित किया है। विशेषतः संस्कृत काव्य ने पहाड़ी चित्रकला को निरन्तर संवर्धित किया है। पहाड़ी शासकों द्वारा वैष्णव

धर्म अंगीकृत करने के कारण कृष्ण के जीवन से सम्बन्धित भक्ति प्रधान काव्य 'भागवत पुराण' पहाड़ी चित्रकारों में सर्वाधिक लोकप्रिय रहा है। इस काव्य ने पहाड़ी चित्रकला को अनन्त रसमयी अनुभूति प्रदान की है। भागवत पुराण के अध्यात्म एवं भक्ति से निमज्जित कथानकों का पहाड़ी चित्रकारों ने वहाँ के शासकों के संरक्षण में अनेक चित्रावलियाँ अंकित की हैं। विशेष रूप से काँगड़ा के राजा संसारचंद के संरक्षण में चित्रांकित भागवत पुराण चित्रावली एक सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि है। यह अपने लावण्यमयी एवं सरस भावांकन के कारण विश्व कला जगत् में अद्वितीय है। काँगड़ा के इस बृहत् भागवत शृंखला को 'मोदी भागवत' भी कहा जाता है। इस चित्रावली में धर्म, संस्कृत काव्य तथा कला का अन्योन्याश्रित संबन्ध द्रष्टव्य है।

यह शृंखला 18 वीं शताब्दी के अंतिम चतुर्थांश में अंकित हुई है। इन भागवत चित्रों को काँगड़ा के निपुण चित्रकारों ने चित्रांकित किया है। काँगड़ा चित्रकारों ने भागवत चित्रों में प्रकृति के सौंदर्य से तादात्म्य स्थापित कर प्रकृति के समस्त अलंकरणों का समायोजन अत्यंत प्रभावोत्पादक ढंग से किया है। प्रकृति का सम्पूर्ण रंग एवं रूप एक संगीतबद्ध काव्य की तरह चित्रों में निबद्ध है। प्रतीत होता है मानो चित्रकार ने चित्रकला की भाषा में भागवत के श्लोकों का ही अनुवाद किया है। इसका सुंदर उदाहरण है भारत कला भवन, वाराणसी में संगृहित चित्र 'वर्षा ऋतु का आनंद लेते ग्वाल बाल'। जिसमें चित्रकार ने अत्यंत मनोयोग से भागवत पुराण के दशम स्कंध के 20 वें अध्याय के श्लोकों में वर्णित वर्षा के उपरांत प्रकृति में संचारित नवजीवन का शब्दशः अंकन किया है।

तपः कृषा देवमीढा आसीद् वर्षीयसी मही। 7।

आसन्नत्पथवाहिन्यः क्षुद्रनद्योऽनुष्यती। 10।

हरिता हरिभिः षष्पैरिन्द्रगोपैश्च लोहिताः। 11।

मेघागमोत्सवा हृष्टाः प्रत्यनन्दच्छिखण्डिनः। 20।

पीत्वापः पादपाः पद्मिरासन्नानात्मूर्तयः। 21।

भागवत पुराण (10/20/7,10,11,20,21)

अर्थात्— जेठ-आषाढ़ की गर्मी से पृथ्वी सूख गयी थी। अब वर्षा के जल से सिंचकर वह फिर हरी भरी हो गयी (7)। छोटी-छोटी नदियाँ अब उमड़-घुमड़कर बहने लगी (10)। पृथ्वी पर कहीं-कहीं हरी-हरी घास की हरियाली थी.... (11)। बादलों के शुभागमन से मोरों का रोम-रोम खिल रहा था, वे अपनी कुहक और नृत्य के द्वारा आनन्दोत्सव मना रहे थे (20)। वृक्ष अब अपनी जड़ों से जल पीकर पत्ते, फूल तथा डालियों से खूब सज धज गये (21)।

उपरोक्त चित्र में प्रकृति का अनुपम ही रूप निखर कर प्रकट हुआ है। कृष्ण तथा ग्वाल बालकों के साथ प्रकृति भी उल्लासित है। कल्लोल करती नदी प्रवाहित हो रही है। नदी का किनारा विविध पुष्पों से अलंकृत है। पृथ्वी हरे कोमल घास से आच्छादित है। दायीं ओर वृक्ष नये रूपों और चमकीले स्वच्छ पत्रों को धारण किये हुए है तथा उनकी झूलती टहनियाँ मानों ग्वाल बाल संग क्रीड़ा कर रही हैं। फलक में नीचे दायीं ओर एक मोर चमकीले पंखों को फैलाकर नृत्य में तल्लीन है। चित्र में भागवत

पुराण में वर्णित वर्षा ऋतु द्वारा व्याप्त अभिनव जीवन एवं उल्लास को चित्रकार प्रकृति के प्रत्येक उपादानों में दर्शाने में अत्यंत सफल रहा है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि काँगड़ा भागवत चित्रावली में चित्रकारों ने काव्य का अनुवाद रंगों एवं रेखाओं के माध्यम से अत्यंत सुंदरता एवं कुशलता से किया है।

संस्कृत साहित्य में काशी (वाराणसी) का सांस्कृतिक अध्ययन

राम बाबू श्रीवास्तव
वाराणसी

संस्कृत विश्व की एक प्राचीनतम भाषा है। इसका साहित्य ऋग्वेद—काल से लेकर आज तक अबाध गति से प्रवाहित होता आ रहा है। ज्ञान—विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में जितना साहित्य संस्कृत भाषा में उपलब्ध है उतना अन्य किसी भी प्राचीन भाषा में प्राप्त नहीं होते। भारतवासियों का विचार है कि सृष्टि के आदिसर्जक ब्रह्मा के मुख से यह देवमयी भाषा प्रस्फुटित हुई थी। संस्कृत विद्या और शिक्षा के क्षेत्र में काशी का सांस्कृतिक महत्त्व वैदिककालीन है। उपनिषद् युग में काशी एक प्रतिष्ठित शिक्षा—केन्द्र के रूप में विकसित हो चुकी थी। काशी का शासक अजातशत्रु अपनी ज्ञान—गरिमा, प्रतिभा और विद्वत्ता के लिए देश में ख्यात था। उससे शिक्षा ग्रहण करने के लिए दूर—दूर देशों से विद्यार्थी काशी आते थे। वैदिक दर्शन, ज्ञान, तर्क और शिक्षा में काशी अग्रणी थी। इसीलिए भगवान् बुद्ध ने अपना 'धर्मचक्र—प्रवर्तन' काशी में ही किया। भारतीय संस्कृत एवं संस्कृति अपनी प्राचीनता, समन्वयशीलता, विश्वबन्धुत्व एवं गहरी मानवीय संवेदना के कारण विश्व संस्कृतियों में प्रमुख है। संस्कृत भाषा की पोषक होने के कारण धर्म के साथ वाराणसी का सम्बन्ध बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा था। काशी का अविमुक्त नामक महाक्षेत्र भगवान् त्रिलोचन द्वारा सुरक्षित है और जहाँ साक्षात् भगवान् शिव मरे हुए प्राणियों को मोक्षदान करते हैं। भूलोक, भुवर्लोक तथा स्वर्गलोक में अथवा पाताल में या महर्लोक आदि ऊपर के लोकों में भी ऐसा उत्तम क्षेत्र नहीं है। यहाँ का निवास अति दुर्लभ बताया गया है। इसकी प्राप्ति के लिए केवल महादेव जी के अनुग्रह की आवश्यकता है। प्रयाग में गंगा—यमुना के संगम का सेवन भी मुक्तिप्रद है तथा उससे भी बढ़कर वाराणसी अविमुक्त क्षेत्र है जो अनायास मोक्ष देने वाला है। प्रतिदिन अविच्छिन्नरूप से वेदों का पाठ, मन्त्रों का जप, अग्निहोत्र, दान, अनेक प्रकार के यज्ञ, देवताओं की उपासना, त्रिरात्र अथवा पंचरात्र आदि आगमोक्त विधि से आराधना, सांख्य, योग और श्रीविष्णु की आराधना — ये सभी श्रेष्ठ कर्म मोक्ष के साधन बताये गये हैं। अयोध्या, मथुरा आदि पुरियाँ भी मरे हुए जीवों को मोक्ष देने वाली बतायी गयी हैं। ये सभी कैवल्य (मोक्ष) के साधन हैं, इसमें सन्देह नहीं। अन्य तीर्थ काशी की प्राप्ति कराते हैं और काशी को प्राप्त होकर मनुष्य मुक्त हो जाता है। काशी में गंगा का वास है। गंगा जिसे अलकनंदा या धुधनी या धुनदी भी कहा जाता है, ऋग्वेद और शतपथ ब्राह्मण में वर्णित है।

बिहार का लोक साहित्य

डॉ० अनामिका कुमारी
वाराणसी

लोक साहित्य एक जीवित तथा विकासोन्मुखी विषय है। इसका निवास लोक-कंठ में है। जिस प्रकार पृथ्वी पर उत्पादन अनंत हैं, उसी प्रकार हमारे चारों ओर विस्तृत लोक ज्ञान भी अपरिमित है। इसके अध्ययन के बिना किसी देश की सभ्यता-संस्कृति, धर्म-नीति, रीति-रिवाज, कला साहित्य सामाजिक अभ्युदय और आकांक्षाओं का सूक्ष्म अवलोकन नहीं किया जा सकता है। लोक-साहित्य जन समाज की वस्तु है अतः उसमें जनता का हृदय लिपटा रहता है। यह साहित्य कृत्रिमता से कोसों दूर रहता है।

लोक साहित्य का क्षेत्र विस्तार अत्यंत ही व्यापक है। साधारण जनता जिन शब्दों में गाती हैं, हँसती हैं, सोचती है, खेलती है, उन सभी को लोक साहित्य के अन्तर्गत रखा जा सकता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक सोलह संस्कारों का विधान प्राचीन ऋषियों ने किया है। प्रायः उन सभी संस्कारों के विषय में रचना की गई है, तथा इस अवसर पर गीत भी गाए जाते हैं। ऋतुओं के कारण प्रकृति में परिवर्तन दिखाई पड़ता है, जिसके कारण उल्लास या आनंद की अनुभूति होती है, जो लोकगीतों में प्रकट होती है। खेतों की बोआई, निराई तथा आम जनता पूर्व पुरुषों के शौर्य पूर्ण कार्यों को गा-गाकर आनंद प्राप्त करती है। गाँव के बूढ़े कहानियाँ सुनाते हैं। दादियाँ-माताएँ लोरियाँ गाती हैं। जन-मन के अनुरंजन के लिए नाटक ग्रामीण जनों का मनोविनोद करते हैं। दैनिक व्यवहारों में सैकड़ों मुहावरों-कहावतों का प्रयोग किया जाता है। छोटे बच्चे खेलते समय हास्यपरक गीत गाते हैं।

अतः कहा जा सकता है कि लोक साहित्य के अंतर्गत सर्वसाधारण का परंपरागत ज्ञान, उनके आनंद उत्सव की सामग्री उनमें अपिरपक्व मन की सृष्टि आदि का समावेश होता है।

डा० रवीन्द्र भ्रमर के अनुसार:

“लोक साहित्य लोक-मानस की सहज और स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। यह बहुधा अलिखित ही रहता है और अपनी मौखिक परम्परा द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक आगे बढ़ता रहता है। इस साहित्य के रचयिता का नाम प्रायः अज्ञात रहता है। लोक का प्राणी जो कुछ कहता-सुनता है, उसे समूह की वाणी बनाकर और समूह में धुल-मिलकर ही कहता है।

बिहारी लोक-साहित्य के संबंध में सबसे महत्वपूर्ण कार्य सर जार्ज ए० ग्रियर्सन का है। 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया' नामक महाग्रंथ इनकी अमर रचना है। इन्होंने भाषा विज्ञान संबंधी कार्यों के अतिरिक्त लोक-साहित्य के संकलन — अध्ययन का जो कार्य किया, वह भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। इन्होंने 1878 ई० में मैथली व्याकरण और शब्दों आदि के संबंध में उनके लेख प्रकाशित हुए थे। विजयमल नामक गाथागीत का संकलन करके सन् 1884 ई० में ही उसे प्रकाशित करवाया था। गोपीचन्द नामक गाथागीत को मगही और भोजपुरी क्षेत्रों में संकलित करके प्रकाशित करने का श्रेय सर्वप्रथम उन्हें ही प्राप्त है।

भारतीय विद्वानों में बिहार के श्री शरदचंद्र राय का कार्य अत्यंत महत्वपूर्ण और प्रशंसनीय है। वे लोक-साहित्यशास्त्री नहीं वरन् मानव-विज्ञान शास्त्री थे। इन्होंने राँची से 'मैन इन इंडिया' नामक शोधपूर्ण त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया, जिसके महत्वपूर्ण लेख लोक-साहित्यशास्त्री के लिए विशेष उपयोगी हैं। हिंदी क्षेत्र के लोक-साहित्य के संकलन संपादन की दिशा में लोकगीतों में कर्मठ शोधक पं० रामनरेश त्रिपाठी का प्रयास सर्वप्रथम स्तुत्य रहा है।

लोक साहित्य के अन्तर्गत निम्नलिखित विधाएँ मिलती हैं—

1. लोकगीत
2. लोक कथा
3. लोकगाथा
4. लोकनाट्य
5. प्रकीर्ण साहित्य

इन सभी के विषय में प्रपत्र के माध्यम से बताया जायेगा।

संस्कृत वाङ्मय में संगीत

डॉ० सुमिता बनर्जी
मिर्जापुर

संस्कृत वाङ्मय भारतीय साहित्य की ही नहीं अपितु विश्व साहित्य की अमूल्य निधि है। संस्कृत विश्व की समस्त भाषाओं में सर्वाधिक प्राचीन है। संस्कृत वाङ्मय इतना विराट है कि वह समस्त ज्ञान-विज्ञान और समस्त कलाओं को स्वयं में समाहित किये है। उसमें ज्ञान की सभी शाखाओं, सभी विधाओं, सभी कलाओं और शास्त्रों का विवेचन इस ढंग से किया है कि उसमें कोई भी विजय भारतीय संस्कृति के भौतिक दृष्टिकोण से बिछुड़ नहीं पाया है। हमारे प्राचीन मनीषियों का जीवन के प्रति समग्र दृष्टिकोण था, खंडित चेतना को उन्होंने कहीं भी स्थान नहीं दिया, इसीलिए जब सभी विधाओं की यही स्थिति रही है तब कला लौकिक संगीत केवल लोकरंजन की वस्तु कैसे रह सकता है, इसीलिए उसे भी गन्धर्ववेद के रूप में प्रतिष्ठा दी गई है।

भारतीय संस्कृति का मूल स्रोत वेदों को माना जाता है। वेद विशुद्ध भारतीय धर्म, दर्शन एवं संगीत के आधार ग्रन्थ है जिन्होंने सम्पूर्ण विश्व को प्रभावित किया है। भारतीय परम्परा के अनुसार संगीत का सम्बन्ध वेदों से ही स्वीकृत है।

संगीत का जन्म संस्कृत वाङ्मय से ही हुआ है यदि स्वर संगीत की आत्मा है तो साहित्य संगीत का आश्रय है। संगीत कला के वृहद सार का उच्चतर मूल्य संस्कृत के ग्रन्थों की मौलिकता पर ही स्थापित है तथा इसे सामान्य जन के बीच प्रतिष्ठित करने में इन ग्रन्थों की विशेष भूमिका रही है।

अतः सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य ही संगीतात्मक है तथा संगीत के क्रियात्मक पक्ष तथा शास्त्रपक्ष दोनों की आधारशिला संस्कृत वाङ्मय पर ही टिकी है।

भारतीय संगीत के प्रचार-प्रसार में इलेक्ट्रानिक मीडिया का महत्व : एक अध्ययन

शिवि तिवारी

वाराणसी

आज इक्कीसवीं सदी में वैज्ञानिक अनुसंधानों, अन्वेषणों, साधनों, माध्यमों ने सर्वतोमुखी विकास का पथ प्रशस्त कर दिया है। पूरे विश्व का परिदृश्य तेजी से बदल रहा है। भौगोलिक सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक सभी दूरियाँ सिमट गयी हैं। देश एक-दूसरे के करीब आ रहे हैं और इन परस्पर संबंधों को आगे बढ़ाने की दिशा में संचार माध्यमों का महत्वपूर्ण योगदान है।

संचार के आधुनिक रूप की जन्मदात्री इलेक्ट्रानिक ही है। जीवन को गतिरता देने वाली यह विस्मयविधा आज विश्व की नियामिका बन चुकी है। विगत वर्षों में इलेक्ट्रानिक मीडिया का जिस तीव्रता से प्रचार-प्रसार हुआ है वह अपने आप में अनोखा अनुभव या क्रान्ति है।

भारतीय संगीत का क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं रहा। उसकी विपुल समृद्धि और शाश्वत के पृष्ठ में इलेक्ट्रानिक मीडिया का फलक अति विस्तृत है। क्रमशः रेडियो, रेकार्ड प्लेयर, टेपरिकार्ड, टी0वी0, कम्प्यूटर जैसे संचार माध्यमों ने भारतीय संगीत के विकास, व्यापक प्रचार-प्रसार, प्रदर्शन, गुण व अतुलनीय प्रभाव को सहज रूप से चिरंजीवी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निर्वहन की है जो मीडिया बिना सम्भव नहीं है।

यह कहा जाय कि बीते समय में अपने श्रोताओं को माध्यम पाकर इसकी रोचकता व अगाधता को विस्तारवादी प्रश्रय मिला तो वहीं आजकल इसके प्रचार-प्रसार में समय-समय पर रेडियो, रेकार्ड-प्लेयर, टेपरिकार्ड-कैसेट्स, टेलीविजन, कम्प्यूटर-इण्टरनेट ने अपना बहुमूल्य योगदान अर्पित किया है। संगीत के विशेष आयोजन सर्वसाधारण के लिए सुलभ हो सके हैं। इसका आनंद संसार के किसी कोने में बैठा व्यक्ति सरलता से ले सकता है। संगीत की सार्वभौमिकता को यथार्थ रूप वस्तुतः इलेक्ट्रानिक मीडिया की ही देन है।

भारतीय संगीत शास्त्र के ऐतिहासिक, सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक तत्त्वों की सार्थकता एवं व्यवहारिकता की विश्लेषणमूलक व्याख्या करती है। संगीत में लगभग सभी ऐतिहासिक एवं सैद्धान्तिक तत्त्वों के उद्भव एवं विकास के साथ-साथ उनकी व्यवहारिकता की भी व्याख्या की गई है। संगीत के साथ-साथ किसी भी विषय में प्राचीन नियमों, परम्पराओं, विधि-विधानों अथवा सिद्धान्तों तथा सांस्कृतिक विशेषताओं आदि को शास्त्र की परम्परा के माध्यम से ही स्थिर रूप प्रदान किया जाता है। ऐसा भी माना जाता है कि मौखिक परम्परा क्षणिक तथा शास्त्र सदा के लिए होता है। भारतीय संस्कृति में हजारों ऐसे विद्वान हैं, जिनको समस्त जगत जानता है, ऐसा नहीं है कि जिन विद्वानों को सब लोग जानते हैं, केवल वे ही विद्वान हुए हैं, ऐसे भी अनेकों विद्वान हुए होंगे, जिनको आज कोई नहीं जानता, क्योंकि इन विद्वानों ने सम्भवतः शास्त्र के रूप में कोई लिखित सामग्री नहीं छोड़ी और अगर छोड़ी भी होगी, तो दुर्भाग्यवश वह अधुना उपलब्ध नहीं होगी, लेकिन जिन विद्वानों को आज सभी जानते हैं उन्होंने अपने ज्ञान को आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखने का महत् कार्य किया था। शास्त्र एवं साहित्य ज्ञान के स्वरूप को आकार प्रदान करते हैं। भारतीय संस्कृति एक महान संस्कृति है और इस संस्कृति में शास्त्र का एक विपुल भंडार है। वेद, गीता, कुरान, गुरु ग्रन्थ साहिब और बाईबल इन सभी धार्मिक ग्रन्थों में मानव जीवन से सम्बन्धित सार्थक सिद्धान्तों का अन्तर्भाव है। इन ग्रन्थों का अध्ययन, मनन करके ही अनेक साधु-सन्त एवं गुरुओं ने मानव का मार्गदर्शन किया है। ब्राह्मण, उपनिषद् आरण्यक एवं सूत्र आदि ग्रन्थ इन्हीं ज्ञान के स्रोतों की व्याख्या करते हैं। किसी-न-किसी रूप एवं किसी-न-किसी अंश में आज भी हमारी जीवन-शैली इन्हीं शास्त्रों के ज्ञान पर आधारित है। लेकिन अपनी-अपनी विचारधारा एवं संस्कारों के अनुसार कुछ लोग इन ग्रन्थों में भी पूर्ण रूप से विश्वास नहीं कर पाते हैं। ऐसा होना स्वाभाविक है क्योंकि भगवान ने हर इंसान को स्वतन्त्र पैदा किया है। हर मानव का अपना सोचने-समझने का स्वतन्त्र दृष्टिकोण है। कुछ महान विद्वानों का मानना है कि श्रीमद्भगवद् गीता उपनिषदों के ज्ञान का संक्षिप्त रूप है। यह तथ्य सही भी जान पड़ता है। ऐसे ही वेदों को भगवान द्वारा ऋषि, मुनियों को दिया हुआ ज्ञान माना जाता है। ज्ञान का कोई-न-कोई स्रोत अवश्य होता है। इसके अतिरिक्त एक और सत्य यह है कि कोई भी ग्रन्थ अपने आप में सम्पूर्ण नहीं होता, क्योंकि ज्ञान का कभी अन्त नहीं होता। अगर केवल वेदों में ही सृष्टि का सम्पूर्ण ज्ञान सम्माहित होता, तो उनके बाद ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् और सूत्र का सम्पूर्ण ग्रन्थों की आवश्यकता न रहती। अतः ज्ञान का स्वरूप इतना विस्तृत है कि उसे किसी एक शास्त्र अथवा ग्रन्थ में सम्माहित नहीं किया जा सकता, क्योंकि सिद्धान्त एवं नियम समय के अनुसार बदल

जाते हैं। वैदिक परम्परा में मानव जीवन के जो मूल्य थे, वे आज बदल चुके हैं। सतयुग में समाज एवं जीवन के जो सिद्धान्त थे, आज वे हमारे समाज पर कितने व्यवहृत हैं, इसके बारे में कुछ कहना संभव नहीं है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि शास्त्र का विषय समय, काल अथवा आवश्यकता के अनुसार बदल जाता है, तो गलत न होगा। परन्तु इतिहास किसी भी देश, काल और समाज का क्यों न हो वह स्थिर रहता है। इसलिए इतिहास का लेखन बहुत ही महत्वपूर्ण एवं विवादास्पद कार्य है।

हमारे भारतीय शास्त्रीय संगीत में अनेकोनेक ग्रंथ लिखे गये हैं जिसमें दी ग्रंथों का विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं।

(1) नाट्यशास्त्र

(2) संगीत पारिजात

कनिष्क काल के उपरांत ही भारत ने संगीत का प्रसिद्ध ग्रंथ 'नाट्य-शास्त्र' लिखा। भरत-मुनि के नाट्य-शास्त्र का काल कुछ विद्वान 200 ई० पू० से 400 ई० के मध्य में मानते हैं। विद्वानों की मान्यता है कि 'भरत' शब्द का अर्थ अभिनय करने वाले (Actor) व्यक्ति से है। इसलिए 'भरत' नाम नाट्य के शास्त्रकारों के साथ जुड़ा हुआ है, ऐसा भी माना जा सकता है। इस आधार पर कुछ विद्वानों का कथन है यह ग्रन्थ किसी एक व्यक्ति की रचना नहीं है। परन्तु फिर भी अधिकतर विद्वान इसी पक्ष में हैं कि यह एक ही व्यक्ति की रचना है।

(1) इनका जन्म काफी द्रविड़ परिवार में 17वीं शताब्दी में हुआ था, वह दक्षिण के रहने वाले थे।

(2) इनके पिता श्री कृष्ण पंडित, संस्कृत के पंडित थे।

(3) ये उत्तर भारत के धनबाड़ में आकर बस गये।

(4) औरंगजेब कालीन बीकानेर के गायक अनुप सिंह (1674-1709) के आश्रित भावमदट के ग्रंथों में संगीत-पारिजात का उल्लेख किया गया है।

(5) उनके पिता श्रीकृष्ण पंडित संस्कृत भाषा के प्रखण्ड विद्वान थे। अतः उन्होंने अहोबल को प्रारंभ में संस्कृत की शिक्षा दी।

(6) तत्पश्चात् अहोबल ने संगीत की शास्त्रीय एवं क्रियात्मक शिक्षा प्राप्त की।

(7) उत्तर भारत में आकर उन्होंने उत्तर भारतीय संगीत में दक्षता प्राप्त करने के लिए ग्रंथों का अध्ययन किया।

(8) पं० अहोबल अल्पकाल में ही उत्तर भारतीय संगीत में पूर्णरूपेण दक्ष हो गये।

(9) इन्होंने सारंगदेव तथा आंजनेय के मतों का सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए संगीत पारिजात की रचना की।

भारतीय कला में धर्म एवं दर्शन की संस्तुति हुयी है। इसमें उन प्रतीकों का विशिष्ट स्थान रहा है जिन्होंने लोक धर्म में आधुनिक काल तक महत्वपूर्ण स्थान बनाये रखा है। यह प्रतीक कल्याण एवं सुरक्षा की भावना से भारतीय संस्कृति में स्वीकार्य हुये हैं। स्वस्तिक, पूर्ण कलश, पद्म, मीनयुग्म, वैजयन्ती माला, श्रीवास आदि प्रतीक अष्टमांगलिक माने गये हैं। इसका अंकन आहत मुद्राओं पर भी प्राप्त होता है। भारतीय कला इतिहास की दृष्टि से प्रागैतिहासिक शैलचित्रों में अभिव्यक्त वृक्ष एवं स्वस्तिक जैसे अभिप्राय तत्कालीन मानव की कलात्मक सूझबूझ एवं सभ्यता के क्रम में संस्कार की झलक देते हैं। परन्तु मौर्य युग से प्रतीक के विशिष्ट संदर्भ कला माध्यम से मिलने लगते हैं। अशोक के स्तम्भों पर पशुओं, पद्म एवं चक्र का अंकन प्रतीकात्मक ही है।

शुंगकाल से वृक्ष, श्रीवत्स, स्तूप, परचिह्न, वैजयन्ती माला, पद्म आदि का प्रतीकात्मक अंकन कला में प्रस्तुत हुआ जिसे धीरे-धीरे कला की महती आवश्यकता मान लिया गया। इनमें पद्म को पवित्रता एवं समृद्धि का द्योतक मानकर विशेष महत्व दिया गया। यही नहीं सूर्य, लक्ष्मी, विष्णु के मुख्य प्रतिमा लक्षणों में इसे सम्मिलित किया गया। विष्णु की नाभि से उत्पन्न पद्म पर ब्रह्मा की उत्पत्ति मानी गयी। राम को राजीव लोचन, लक्ष्मी को पद्मा कहा गया। वस्तुतः स्थिरजल अथवा कीचड़ में उत्पन्न होकर भी सदगुणों से युक्त पद्म सभी अर्थों में रूप, गुण, रंग के कारण श्रेष्ठ माना गया।

ब्राह्मण ही नहीं बौद्ध, जैन धर्मों में भी पद्म की लोकप्रियता दिखायी देती है। इसीलिये कला में भी इसे महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। कभी देवी-देवताओं के लांछन तो कभी आलंकारिक अभिप्राय के रूप में पद्म का अंकन मध्यकालीन मंदिरों में भी किया गया। यही नहीं हिन्दू प्रभाव में निर्मित मुगल स्थापत्य (जहाँगीर महल, फतेहपुर सिकरी) में भी पद्म का आलंकारिक अंकन दिखायी देता है। वस्तुतः भारतीय मनीषियों, कलाकारों की सोच में सम्मिलित होने के कारण पद्म ने यह महत्व प्राप्त किया जिसकी निरन्तर अभिव्यक्ति लोक कला में भी होती रही है।

महामहोपाध्यायचार्यगङ्गाधरशास्त्रिकवित्त्वसौन्दर्यसमीक्षा

डॉ० शिवरामशर्मा
वाराणसी

सृष्टिसमारम्भादेव निखिलभुवनव्यतिरिक्ततया प्रसिद्धायां
त्रिलोकशोकशमनैकव्यसनिन्या भगवत्या भागीरथ्या प्रक्षालितपादपद्मायां चराचरस्यास्य

जगतो महेश्वरस्य भगवतः शिवस्य नित्यनिवासभूम्यामस्यां काश्यामतिप्राचीनकालादेव वेदवेदाङ्गादिसकलशास्त्राध्ययनाध्यापनमननानुसन्धानसंवर्धनपरम्पराविच्छिन्नतया प्रवर्तते। यद्यप्यत्र सकलशास्त्रतत्त्वज्ञा अनेके दोषज्ञा बभूवुः विदधुश्चानवरतं सुरसरस्यत्या समाराधनं किन्तु काव्यतत्त्वविदां कवीनाञ्च व्यासश्रीहर्षाप्पयदीक्षितपण्डितराजादीनां काश्या कीर्तिलतोल्लासे महिमोत्कर्षप्रकाशे च काव्यपूर्वैव भूमिका वर्तते। सेयं वाराणसेया कवित्वपरम्पराद्याप्यविच्छिन्नतया प्रवर्तते। परम्परायामस्यां काश्यामेकोनविंशतितमे ख्रीष्टाब्दे काशिकेयदाक्षिणात्यकुलोत्पन्नानां श्रौतस्मार्तकर्मपरायाणानामाचारविचारपरिपूतान्तःकरणानां महामहोपाध्यायानामाचार्य गङ्गाधरशास्त्रिणामाधुनिकविद्वत्सु सातिशयसम्मानास्पदता वर्तते।

सकलशास्त्रपारङ्गानामपि श्रीशास्त्रिमहोदयानामासीत् काव्यशास्त्रानुशीलने काव्यप्रणयने च साग्रहा प्रवृत्तिः। तैः प्रणीतम् “अलिविलासिसंल्लापाख्य काव्यं साम्प्रतिकरांस्कृतकाव्येषु अनितरसाधारणीं प्रशस्तिं दधाति। काव्येऽस्मिन् कविना अलिविलासिनोर्वार्ताव्याजेन संसारस्यास्य निःसारता वैषयिकसुखानां दुःखपरिणामिता, चार्वाकबौद्धजैनादिदर्शनानां खण्डनपुरःसरमास्तिकदर्शनानां प्रामाणिकता, प्रसङ्गतो भारतीय महीमण्डनानां विविधतीर्थानां भौतिकसौन्दर्यवर्णनमाध्यात्मिकमहत्त्वप्रकाशनञ्च कृतमस्ति। गूढदार्शनिकसिद्धान्तानां प्रतिपादनमत्र तथा सरससालङ्कारशब्दार्थनिबन्धनेन कविना व्यधायि यथा न कुत्रापि सहृदयानां मानसमुद्वेजयति। विविधशास्त्रीयसिद्धान्तप्रतिपादकमिदं काव्यं सर्वत्र गूढार्थस्फोरणे सामर्थ्यं धारयत् काव्यशास्त्रीयसिद्धान्तानुपालनेऽपि मतिं बध्नाति।

“तर्कषु कर्कशधियो वयमेव नान्ये काव्येषु कोमलधियो वयमेव नान्ये” इति प्राचीनोक्तिं चरितार्थयदिभराचार्यगङ्गाधरशास्त्रिभिः स्वकीयं शास्त्रकवित्वमस्मिन् काव्ये विख्यापितम्। आचार्यराजशेखरेण शास्त्रकविः काव्यकविरुभयकविश्चेति कवीनां त्रैविध्यमङ्गीकृतम्। शास्त्रकवयोऽपि तेन त्रिविधा व्यख्याताः, एके स्वयं नव्यशास्त्रोद्भावकाः अन्ये शास्त्रे काव्यं विनिवेशयन्तः, अपरे च काव्ये शास्त्रं सङ्गमयन्तः। एतेषु शास्त्रचरणाः काव्ये शास्त्रसिद्धान्तानां सन्निवेशं विधायात्मनः शास्त्रकवित्वमुल्लासयामासुः। “उपकार्योपकारकभावं तु मिथः शास्त्रकाव्ययोर्मन्यामहे” इत्युक्त्वा राजशेखरेण यच्छास्त्रकाव्ययोः परस्परमुपकार्योपकारकभावोऽनुमतः सोऽत्रालिविलासिसंल्लापे प्रतिपद्यमालोकपथमवतरति।

काव्येऽस्मिन्नलिः नायको विलासी च प्रतिनायको वर्तते। आस्वादिताखिलभौतिकसुखोऽलिः जगतो निःसारत्वं दुःखपरिणामित्वञ्च विज्ञाय वेदान्ततत्त्वावबोधेनाखण्डानन्दनिर्भरस्वान्तो न कुत्रापि लौकिकेषु भुक्तोऽङ्गितेषु सुखेषु रतिं बध्नाति। प्रतिनायकरूपेण कल्पितो विलासी नानाभिरापातमधुराभिरुक्तिभिस्तं पूर्वजीवनेऽनुभूतानि सुखानि स्मारयन् पुनर्लौकिकबन्धने पातयितुमिच्छति, किन्तु न खलु कृतदृढनिश्चयोऽसावलिर्विलासिवचनजाले पतति। ततो विलासी चार्वाकजैनबौद्धादिनास्तिकसिद्धान्तानुपस्थापयति, किन्तूपनिषत्सिद्धान्ते दृढमतिरसौ न क्वापि विमतिमाश्रयति प्रत्युत नास्तिकमतानां निरसनं विधाय स्वमतं प्रतिष्ठापयति।

शान्तरसप्रधाने काव्येऽस्मिन् सर्वत्रैव गुणालङ्कारादिकाव्यतत्त्वानामुपन्यासः सहृदयमनांसि समुल्लासयति। अलङ्कारप्रयोगे कवेः पाटवं विशेषतोऽभिलक्ष्यते।

गुणीभूतव्यङ्ग्यच्छटापि प्रमदमुद्धाटयति। इत्थं सकलकाव्यतत्त्वसंवलितं काव्यमिदं सहृदयैरवरयमास्वादनीयम्।

काव्यानां मूलम्

गणेश राज जोशी

बी. देवधरः

अन्येषां भारतीयास्तिकदर्शनानामिव लोकोत्तरनिपुणकविकर्मणां काव्यानां मूलमपि वेद एव वर्तते। अपि तु वेदोऽपि काव्यशब्देन व्यवहृतं क्वचिद् वेदे। "पश्य देवस्य काव्यम्" इत्यत्र। काव्यस्यात्मा यो रसः स तु परमात्मैव "रसो वै सः" (तैत्ति.उप.) इति "रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दीभवति" (तैत्ति उप.) इति च श्रुतेः।

काव्यशोभाधायका अलङ्कारा अपि वैदिकमन्त्रेषु बहुधा सन्ति प्रयुक्ताः। यथा—
द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।।(मु.उप.)

अत्रालङ्कारशास्त्रज्ञानं विना वेदमन्त्रस्यास्यार्थानवगतेः। अत एव यायावरीयो राजशेखर उपकारत्वादलङ्कारशास्त्रं वेदस्य सप्तममङ्गमित्याह— "उपकारकत्वादलङ्कारः सप्तममङ्गम्" (काव्यमीमांसा) इति। वयन्तु वेदप्रतिपाद्यो निर्गुणः परमात्मा यदा सगुणो भूत्वा रामादिरूपेणावततार वेदोऽपि तदा सगुणं परमात्मानं वर्णयितुं रामायणादिकाव्यरूपेणावततार। वेदावतार एव काव्यमित्यर्थः। तदुक्तं केनचिन्मनीषिणा—

"वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे। वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद् रामायणात्मना।।"

इत्युक्तेः काव्यमपि वेदवदङ्गी। तदङ्गानि पुनर्यानि वेदस्य शिक्षादयः षड् अलङ्कारशास्त्रं चेति सप्तेति ब्रूमः। एतस्यैव सविस्तरं विवेचनं शोधपत्रे करिष्याम इत्योम्।

‘अभिनवशुक सारिका’ में आधुनिकता एवं परम्परा के आयाम

संध्या

वाराणसी

‘अभिनवशुकसारिका’ प्रो० राधा वल्लभ त्रिपाठी द्वारा प्रणीत है इसमें एक प्रधान कथा तथा छः उपकथा है प्रधान कथा का नायक ‘शशिधर’ नायिका ‘शम्पा’ है, शम्पा एक आधुनिक नारी है वह परम्परा पर विश्वास नहीं करती है जिसके कारण उसे बहुत सी समस्याओं का सामना भी करना पड़ता है। आधुनिकता के कारण वह गलत रास्ते पर भी चल पड़ती है, परन्तु इन छः उपकथाओं के माध्यम से वह धीरे-धीरे सच्चाई को स्वीकार करती है कि—‘परम्परा हमारे घर की ‘नींव’ की तरह है।

इसमें कहानियों के माध्यम से परम्परा और आधुनिकता के बीच एक संवाद रचने का प्रयास किया गया है।

डॉ० हरिनारायण दीक्षित की कृतियों में आर्थिक चिंतन

रुबी साहू
वाराणसी

बुन्देलखण्ड के सुविख्यात संस्कृत कवि डा० हरिनारायण दीक्षित का जन्म उत्तर-प्रदेशस्थ जालौन जनपद में हुआ। प्रो० दीक्षित जी सम्प्रति कुमाऊँ विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के प्रोफेसर एवं अध्यक्ष पद से सेवानिवृत्त होकर नैनीताल में निवासरत हैं। इन्होंने अनेक महाकाव्य, गद्यकाव्य, नाटक आदि का प्रणयन कर समकालीन विश्व के आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक आदि विभिन्न पक्षों को गम्भीरतापूर्वक विचार कर प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत शोध-पत्र के माध्यम से महाकवि दीक्षित जी की कृतियों में वर्णित आर्थिक चिंतन को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। कवि की कृतियों के अनुशीलन से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि समकालीन जीवन में कृषि, पशुपालन तथा विभिन्न प्रकार के उद्योग अर्थोपार्जन के मुख्य साधन हैं। जहाँ कृषि अर्थ का प्रमुख साधन है वहीं आज के नवयुवकों द्वारा इसे हीन दृष्टि से देखा जा रहा है तथा इसकी अपेक्षा अन्यत्र कारखानों आदि में कार्य करना अधिक पसंद किया जा रहा है। एक ओर कृषिकार्य में सहायता तथा दूध आदि के व्यापार के लिए लोगों के द्वारा पशुपालन भी किया जाता है वहीं हदूसरी ओर चमड़ा आदि के व्यापार के लिए उन्हें मार भी दिया जाता है। लकड़ी, लोहे आदि के द्वारा विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के निर्माण के लिए जहाँ बड़े-बड़े उद्योगों का वर्णन है वहीं अचार, चटनी जैसे घरेलू उद्योगों के भी सन्दर्भ प्राप्त होते हैं। इस प्रकार कवि की कृ की कृतियों में अनेक ऐसे सन्दर्भ प्राप्त होते हैं जो विभिन्न प्रकार से अर्थोपार्जन का संकेत देते हैं तथा आर्थिक समृद्धि के सूचक हैं।

संस्कृत साहित्य एवं विज्ञान

डॉ० रूपम पाठक
वाराणसी

विज्ञान और साहित्य का मंजुल समन्वय ही मानव और समाज को पूर्ण तथा दीर्घजीवी बनाता है। संस्कृत साहित्य के अभिव्यक्ति की भाषा भले ही भिन्न हो, किन्तु अनुभूति की भाषा तो हृदय की ही होती है। संस्कृत साहित्य की ग्राह्यता सर्वकालिक रही है। वर्तमान समय की अंधी प्रतिस्पर्धा और घनघोर स्वार्थपरायणता, असंवेदनशीलता के दौर से बाहर निकालकर जीवन में मानवीय मूल्यों का तथा सम्पूर्ण ब्रह्माण के हितों की

संरक्षा, विश्वबन्धुता, सहिष्णुता, परदुःखकातरता संवेदनशीलता जैसे-उदात्त गुणों का विकास व स्थापना करने में संस्कृत-साहित्य ही सक्षम है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि विज्ञान की परम्परा संस्कृत साहित्य में अनादिकाल से चली आ रही है। पण्डितराज जगन्नाथ, अश्विनीकुमार, धनवन्तरि, कालिदास, भवभूति, माघ, श्रीहर्ष, महर्षि वाल्मीकि, भर्तृहरि, भारवि आदि कवियों की कृतियाँ आज भी उतनी ही नवीन एवं वैज्ञानिक है संस्कृत साहित्य विज्ञान से ओतप्रोत है।

आचार्यरेवाप्रसादद्विवेदिनः खण्डकाव्येष्वन्तर्राष्ट्रीयचिन्तनम्

नवराज निरौला
वाराणसी

सम्प्रतिकाले संस्कृतसाहित्ये बहवः जगत्प्रसिद्धाः कवयः विद्यगमः सन्ति। तेष्वामाचार्यरेवाप्रसादद्विवेदी, आचार्यशिवजी उपाध्याय, आचार्य अभिराजराजेन्द्रमिश्र, आचार्यगोविन्दपाण्डेमहोदय, आचार्यहरिश्चन्द्रदीक्षित आचार्यरामप्रतापवेदालंकारः प्रभृतयः बहवः आलंकारिकाः कवयश्च सन्ति। तेषु साम्प्रतिकेषु कविषु गुणगणगणनाप्रसंगे कनिष्ठिकाधिष्ठित आचार्यवर्यः रेवाप्रसादद्विवेदिमहोदय आलंकारिकः कविश्च। सर्वविदितमेवैतत् तु।

तस्याचार्यद्विवेदिमहोदयस्य खण्डकाव्येषु प्रमुखतयैव वैश्विकचिन्तनमपि दरीदृश्यते। सुगतो ब्रवीति, अयि नीलनदि! अमेरिकावैभवम् प्रभृतयः काव्येषु विशदवैश्विकचिन्तनं दृश्यते। सुगतो ब्रवीत्यत्र तालिवान् आतंकिना भगवतः बुद्धस्य मूर्तेः त्रोटनविषये स्वकीयः भावाभिव्यक्तिः वर्तते। तथैव अयि नीलनद्यत्र नीलनद्याः स्वच्छता, प्रभावः, वैशिष्ट्यं, सौन्दर्यं वर्णितं वर्तते। अनेनैव प्रकारेण अमेरिकावैभवमित्यत्र संयुक्तराज्य अमेरिकानाम्नः देशस्यार्थिकः राजनीतिकः भौगोलिकविकासेन तस्य देशस्योत्कर्षतायाः वर्णनं विहितं वर्तते। आचार्यस्यान्येषु काव्येष्वपि मानवीयसंवेदनाचिन्तनद्वारा वैश्विकचिन्तनमवलोकयितुं शक्यते। यथा-सुस्थाः सदैव परिपान्तु विधातृसृष्टिम् । (शरशय्या) अत्र सकलसृष्टेः रक्षणमेव वैश्विकचिन्तनं वर्तते। अन्यश्च-

शान्तं तमो यदि मनुष्युपलभ्यमानं
दान्तं रजंच यदि कर्मसु वीक्ष्यमाणम्।
सत्त्वं यदि प्रमद-मूर्त्युपचीयमानं

कायं, जनुर्नु फलेग्रहि मानुषाणाम् ॥ (शरशय्या 87)

अनेनैव क्रमेणाचार्यस्यान्येषु काव्येष्वपि वैश्विकचिन्तनमवगन्तव्यं शक्यते।

आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी का काव्य चिन्तन वैश्विक परिप्रेक्ष्य में

नीरज कुमार त्रिपाठी
वाराणसी

आधुनिक कवि प्रो० रेवाप्रसाद द्विवेदी जी ने जहाँ एक ओर 'काव्यशास्त्रीय' ग्रन्थों की रचना की है वहीं दूसरी ओर साहित्यिक काव्यों की रचना की है। द्विवेदी जी एक कुशल कवि, शास्त्रकार, नाटककार, आलोचक तथा महान् चिन्तक हैं। द्विवेदी जी एक यथार्थवादी रचनाकार हैं। उनकी प्रत्येक रचना यथार्थ का दामन नहीं छोड़ती पर वह मात्र घटनाओं का व्यौरा बनकर न रह जाये इसके लिए उनका लेखनीय व्यक्तित्व भरसक प्रयत्नशील रहा है। वे परिवेश और परिस्थिति के प्रति जागरूक रहकर बड़े ही प्रामाणिक ढंग से वस्तु सन्दर्भों को रचनाओं में प्रस्तुत करते हैं, जो हमारे सामने जीवन का कोई सत्य उद्घाटित होता है। सामाजिक यथार्थ का अन्तर्विरोध को सामने लाती है जो हर युग और काल में समाज के अन्दर पाये जाने वाले संघर्ष की पहचान कराता है, उन शक्तियों को भी जो समाज की यथाशक्तियों में बनाये रखना चाहती है और दूसरी ओर उन तत्त्वों को भी जो समाज को आगे ले जाने में सक्रिय भूमिका अदा करते हैं।

उनके 'शकटारम्', 'सुगतो ब्रवीति' नामक काव्यों में उपर्युक्त तथ्य देखने को मिलते हैं। अफ्रीका देश के जन पुरोधा 'नेल्सलमण्डेला' द्वारा समाज में व्याप्त कुरीतियों के लिए संघर्ष तथा अफ्रीकी सरकार को 'नेल्सनमण्डेला' को 25 वर्षों तक कठोर कारावास में रखकर दलित समाज का दमन करना तथा अन्त तक मण्डेला जी समाज के लिए संघर्ष करना द्विवेदी जी के वैश्विक चिन्तक का ही परिचायक है। इसी प्रकार द्विवेदी जी के अन्य काव्यों में भी हमें प्राप्त होता है। 'सुगतो ब्रवीति' नामक खण्डकाव्य में तालिबान द्वारा भगवान बुद्ध की 1800 वर्ष प्राचीन गगन चुम्बी प्रतिमा को बम द्वारा नष्ट करना, वहाँ के लोग इन पैशाची शक्तियों से लड़ते हुए मनुष्यता को स्थापित करने का प्रयास करना खण्ड काव्य में दर्शाया गया है, जो वैश्विक चिन्तन का परिचायक है।

भगवान् सुगतो ब्रवीति कण्ठध्वनिमुद्वास्य तु मौनिना स्वरेण।

शृणुंते तदिदं सनातनोऽयं वचनं तस्य महात्मनस्वदिव्यम्॥

अलिविलासिसंलाप के पंचम शतक में तीर्थाटन एवं अलंकार विवेचन

संजय त्रिपाठी
(सहायक अध्यापक)
वाराणसी

महामहोपाध्याय पण्डित गंगाधर शास्त्री तैलंग (सी०आई०ई०) आधुनिक युग के सर्वशास्त्रज्ञ पण्डित थे। शास्त्री जी का ज्ञान साहित्य व्याकरण धर्मशास्त्र और नास्तिक एवं

रितिक दर्शनों में समान रूप से था। 'अलिविलासिसंलापः' उनके द्वारा प्रणीत प्रौढ रत्नकाव्य है। इस ग्रन्थ की रचना उन्होंने सन् 1907 में की। इसमें शास्त्री जी ने 'अदश दर्शनी' का परिचय अद्वैतवेदान्त दर्शन का सैद्धान्तिक पक्ष उपस्थापित किया है। शास्त्री जी ने इस खण्डकाव्य को शतक के नाम से अभिहित किया है और नवशतकों में भक्त किया है। यह काव्य एक ओर समाधिस्थ होकर दार्शनिक रसानुभूति कराता है तो सारी ओर काव्यगत रसानुभूति कराता है।

विविध समस्यानां समाधात् संस्कृतम्

डॉ० रामानन्द शर्मा
सहायक प्राध्यापक
बिहार

निखिलं मानवजीवनमेव विविध समस्या समन्वितं विद्यते। न खलु मानव जीवनं ज्वलन्, अपि च देव, यक्ष गन्धर्व, पशु, पक्षी इत्यादि प्राणिनामपि जीवनं तथैव स्वीकर्तव्यम्। जीवन यापन क्रमे विशेषा परिस्थितिः, विज्ञाना, प्रतिकूला चेति विविध रूपेण समस्यायां ननी विद्यते। सा च विविध विषयिणी, भिन्नाश्च भवन्ति। एकस्याः समाजनानन्तरं शीयोत्पद्यते। पुनश्च अपरा निदानाभ्यन्तरेऽन्या समागच्छति। एवम्प्रकारेण चक्रवत् स्थितितस्याः भवति।

समस्यानां द्विधा विभागः संजातः

क) दैविकी समस्या (प्रकृतिसमन्विता समस्या)

ख) भौतिक समस्या (वर्तमान मानवीया समस्या)

गाम्प्रतं भारतवर्षे विशेषकष्टप्रदा, दुःखदायिनी, भयावहा, सन्त्रस्त करा त्रिविधा दरीदृश्यन्ते। अश्च—

1. आतंकवादिनी समस्या
2. धर्मान्तरण रूपा समस्या
3. हिंसावादिनी समस्या

विविधानां समस्यानां समाधानं संस्कृतेन, संस्कृते च निहितमस्ति।

संस्कृते प्रेरकं भर्तृहरेः वाक्यम् — मनस्वीकार्यार्थीन गणयति सुविनयदुखम्

गालोड्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः।

दमेकं सुनिष्पन्नं विज्ञेयं संस्कृतं सदा।।

